बच्चन की अन्य रचनाएँ

१ जनगीता (अनुवाद)
२ ओथेलो (अनुवाद)
३ आरती और अंगारे
४ मैकबेथ (अनुवाद)
५ धार के इधर-उधर
६ प्रणय पत्रिका
७ मिलन यामिनी
८ खादी के फूल
९ सूत की माला
१० बंगाल का काल
११ हलाहल
१२ सतरंगिनी
१३ आकुल अंतर
१४ एकांत संगीत
१५ निशा निमंत्रण
१६ मधुकलश
१७ मधुबाला
१८ मधुशाला
१९ खैयाम की मधुशाला (अनुवाद)
२० प्रारंभिक रचनाएँ—पहला भाग } —कविताएँ
२१ प्रारंभिक रचनाएँ—दूसरा भाग }
२२ प्रारंभिक रचनाएँ—तीसरा भाग —कहानियाँ
२३ बच्चन के साथ क्षण भर (संचयन)
२४ सोपान (संकलन)

'मधुशाला' का अंग्रेजी और 'बंगाल का काल' का बँगला प्रकाशित हो चुका है।

बुद्ध और नाचघर

तथा

अन्य कविताएँ

बच्चन

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

पारावार के पारावार,
और आँसुओ का भार
सिद्ध कर देता है हलका
सारे सितारो का ससार।
कमाल!

पर आज
भारी है मुझपर दिन,
भारी है मुझपर रात,
पर छोडो भी मेरी बात।
तुम्हारी है छब्बीसवी वर्षगाँठ,
गैस के छब्बीस रगीन गुब्बारे,
तुम्हारी आयु के साल,
उन्हीके सहारे
देखता हूँ तुम्हे ऊपर आते,
खुशियाँ मनाते,
शामिल हूँ मै तुम्हारे साथ।
जानते हो मेरा इतिहास,
इसीसे नही विश्वास?
जिनकी आखों मे है आँसू,
वही समझते है फूलो का हास,
जिनके सीने पर है चट्टान,
वही समझते है तितलियो की उडान,
कलियो की मुसकान।

—का जन्मदिन

मूल्य	तीन रुपये (३००)
प्रथम संस्करण	सितम्बर, १९५८
प्रकाशक	राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
मुद्रक	हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली

प्रिंसों का होता है मान-गान।'
मैं नहीं हूँ हिज हाईनेस जोधपुर का भाई,
नवाब रामपुर का भतीजा,
जाम साहब का भांजा,
महाराज पटियाला का साला,
या बहावलपुर का बहनोई,
या निजाम का दामाद,
मुझे मिलती नहीं 'प्रिवी पर्स'
मैं करता हूँ गाढ़ी कमाई,
मैं हूँ कलम का मजदूर,
'प्रिंस' है मेरे लिए गाली।
प्रिंसों का लद चुका था जमाना,
पटेल ने उनकी इज्जत बचा ली।
वाह रे हिंदुस्तान के राजो,
तुमने हिंदुस्तानी इंसान को
लूट लिया है मनहर!

और, न मैं हूँ बाजीगर,
दिखला नहीं सकता 'रोप ट्रिक',
देखी है जरूर, पर कहाँ पर?
भारत में नहीं, यहाँ आकर।
आधी-आधी रात को,
कालिजों के पीछे,
उठती नहीं रस्सी ऊपर,

समर्पण

कैम्ब्रिज के साथियों—
हमीद अहमद खाँ
(पाकिस्तान)
रनबीर सिंह बावा
रूपचंद साहनी
विश्वनाथ दत्त
और
कमला दत्त
को

खौलकर ही शात होने दे।

आज तेरा मित्र तुझपर वार करता,
और तेरे नाम पर,
औ' पीठ पीछे
वार करता !'
फूल की आशा
जहाँ से थी, वहाँ से
एक भाला उठ रहा है !
और कारण ?
कुछ नही इसके सिवा है–
क्योकि यह ससार है,
क्योकि ईर्ष्या औ' घृणा भी
उस जगह है
जिस जगह पर प्यार है।

मैं उसी रनवीर का
गुणगान करता हूँ
कि जिसके
घाव सीने पर लगे हो।
आज मै अनुरोध
यह तुझसे करूँगा–
आँख पीछे को फिरा मत,
'जानकर अनजान बन जा।'
और, आने दे उसे जो

शब्द-जालो मे फँसी वह।
पीजरे में डाल उसको
गीत किरणो के,
कुसुम के,
औ' सुरभि के
अनगिनत मैने लिखे
उसके लिए, पर
गध-रस भीनी हुई रगीनियाँ
उडती गई उसकी निरतर!

'स्वप्न मेरे,
बोलते क्यो तुम नही हो?
क्या मुझे धोखा रहे देते
बराबर?'
और वे बोले कि
'पागल,
मानवी स्वर-साँस के
आकार जो हम,
पत्र, स्याही, लेखनी का
ले त्रिगुण आधार,
पुस्तक-पीजरो मे,
आलमारी के घरो में,
जब कि होते बद
रहते अत में क्या?—

अपने पाठकों से

अपनी कविताओं का एक नया संग्रह आपके सामने रख रहा हूँ—'बुद्ध और नाचघर', यह नाम इस संग्रह का इसलिए दे दिया गया कि इस शीर्षक की इसमें एक कविता है जो अंत में रक्खी गई है, गो मैं यह स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि रचना-क्रम में यह अंतिम कविता नहीं है। शायद 'शैल-विहंगिनी' को छोड़कर यह इसकी सबसे लम्बी कविता भी है और मेरी इस प्रकार की कविताओं में संभवतः इसने पाठकों का ध्यान सबसे अधिक आकर्षित किया है। इसकी रचना मैंने अपने इंग्लैंड-प्रवास के दिनों में की थी और पहले-पहल यह १९५३ में 'नई धारा', पटना, में प्रकाशित हुई थी, इसके पश्चात् कई पत्र-पत्रिकाओं ने इसे उद्धृत किया। प्रसिद्ध कलाविद् और साहित्यकार श्री रायकृष्णदास को यह कविता इतनी रुची कि वे प्रयाग मेरे घर आए और मेरी पत्नी से मेरी हस्तलिखित प्रति माँग ले गए। प्रसंगवश मैं यह बता देना चाहता हूँ कि यह कविता जिस रूप में यहाँ दी गई है, वह वही नहीं जिस रूप में यह सर्वप्रथम लिखी गई थी। मैंने उसमें कुछ सुधार कर दिया है और, स्वाभाविक ही, मेरा विश्वास तो यही है कि इसका वर्तमान रूप अधिक निखरा हुआ है। पहले मैं अपनी कविताओं में, एक बार उनके छप जाने पर, संशोधन नहीं करता था। ईट्स पर रिसर्च करने के बाद मैंने उनकी यह अच्छी या बुरी आदत सीख ली है। वे तो अपनी रचनाओं में संस्करण-दर-संस्करण सुधार करते जाते थे। अब मेरा भी यह स्वभाव हो गया है कि कविताओं को दुहराते समय यदि कोई त्रुटि दिखाई पड़े तो उसे हटा देने, या कोई परिवर्तन सूझ पड़े तो उसे कर देने में मुझे संकोच नहीं होता। ऐसे परिवर्तन यहाँ कई कविताओं में किए गए हैं। खैर, एक बात मैं और कहना चाहूँगा, यह विशुद्ध काव्य-संग्रह है। कहने का मतलब यह है कि इसमें विभिन्न विषयों पर, विभिन्न परिस्थितियों—

सना,
पागल बना-सा,
प्यास अपनी
शात करने के लिए क्यो
छानता आकाश रहता ?
(भमि की करता अवज्ञा
तीन-चौथाई सलिल से
जो ढकी है।)
हाथ क्या आता ?
हँसी अपनी कराता।
क्यो परिधि अपनी
नही पहचान पाता ?

साफ है,
पापी पपीहे ने
लगाया घोसला मेरे हृदय मे।

बहुत समझाया
उसे मैने,
न पी की बोल बोली,
किंतु दीवाना
न माना,
एक दिन मैने मरोडे
पख उसके,

मन स्थितियो मे, विभिन्न दृष्टिकोण से लिखी हुई कविताएँ सगृहीत है और 'वुद्ध और नाचघर' की छाया-छाप अन्य कविताओ मे देखने या खोजने का श्रम व्यर्थ होगा। सग्रह की कविताओ को पढने के पश्चात् शायद आपकी भी यही धारणा होगी कि पुस्तक का यह नाम केवल आकस्मिक एव सुविधा-परक है और प्रत्येक कविता अपनेआप मे स्वतन्त्र है। यह और बात है कि किन्ही कविताओ मे किसी प्रकार के साम्य अथवा मैत्री का आभास मिलेगा।

'वुद्ध और नाचघर' की कविताओ मे एक बाहरी साम्य यह है कि ये सब-की-सब मुक्त छद मे लिखी गई है। कभी इसे 'स्वच्छद छद' अथवा 'मुक्त काव्य' भी कहा जाता है। किसी समय छिद्रान्वेषी समालोचको ने इसे रबर, केचुआ और कँगारू छद की सज्ञा भी दी थी। 'मुक्त छद' शब्द का प्रयोग मैने केवल इस कारण किया है कि ऐसी कविताओ के लिए यह विशेषण प्रचलित हो गया है। गलत चीजे भी प्राय प्रचलित हो जाती है, और मैने कही पढा था कि शब्द-शास्त्र का नियम यह है कि सर्वसाधारण अगर गलत चीजो को भी ठीक मान ले तो उन्हे ठीक ही मान लिया जाता है। वैसे 'मुक्त छद' में मुझे एक प्रकार का विरोधाभास भी दिखाई देता है। मुक्त का अर्थ है स्वच्छद और छद का अर्थ है बँधा हुआ (छन्दासि छादनात्—यास्काचार्य),कविता के सदर्भ मे मात्रा, लय और तुक मे। स्वच्छद और बँधा हुआ एक साथ ही कैसे ? सभव है जनसाधारण के मस्तिष्क में इस शब्द को मान्यता देने का एक सूक्ष्म कारण हो। जनता नितात अकारण कुछ भी नही मानती, करती। शायद मुक्त छद से लोगो को ऐसी कविता का बोध होता है जो अपनी अभिव्यक्ति मे तो स्वच्छद हो पर अपने भाव-विचारो मे बँधी। भाव-विचारो में बँधा होना—गँठा होना कविता की बुनियादी आवश्यकता है, चाहे वह कविता महाकाव्य हो, खडकाव्य हो, गीत हो अथवा मुक्तक। लम्बी कविताओ मे भी, भावो-विचारो की विविधता के बावजूद किसी प्रकार की एकता होनी ही है। गीतो अथवा मुक्तको में यह एकता सिमटकर भाव-विचार की उस इकाई का रूप ले लेती है जिसे आप गीत की आत्मा अथवा उसका प्राण कह सकते है। कविता के प्रसग में अभिव्यक्ति की

युग का जुआ

युग के युवा,
मत देख दाएँ,
और बाएँ, और पीछे,
झाँक मत बगलें,
न अपनी आँख कर नीचे,
अगर कुछ देखना है,
देख अपने वे
वृषभ कंधे
जिन्हें देता निमन्त्रण
सामने तेरे पड़ा
युग का जुआ,
युग के युवा!

तुझको अगर कुछ देखना है,
देख दुर्गम और गहरी
घाटियाँ
जिनमें करोड़ों संकटों के
बीच में फँसता, निकलता
यह शकट

स्वच्छदता मेरे लिए निरर्थक शब्द हैं । कविता जब अभिव्यजन मात्र नही, प्रेपण और सहानुभूति (सह+अनुभूति) भी होती है तो उसके भाव-विचार उसकी अभिव्यक्ति को निर्धारित, निरूपित और अनुशासित करते हैं। अभिव्यक्ति में काव्य के अन्य उपकरणो के अतिरिक्त उसका छद भी सम्मिलित होता है। 'मधुशाला' ने एक प्रकार के छद का रूप लिया, 'निशा निमत्रण' ने दूसरे प्रकार का, 'हलाहल' ने एक तीसरे प्रकार का—उसका उपयोग मैं पहले 'खैयाम की मधुशाला' में कर चुका था, और 'मिलन यामिनी' के पहले और तीसरे भाग ने अलग-अलग प्रकार के छदो का और दूसरे भाग ने विभिन्न प्रकार के छदो का—कुछ 'सतरगिनी' में प्रयुक्त और कुछ सर्वथा नवीन। मैंने अपने विद्यार्थी-जीवन में छदो का अध्ययन तो किया था, पर रचना करते समय मैंने कभी इस पर पूर्व-विचार नही किया कि किस छद का उपयोग किया जाय। मैंने अपने भाव-विचारो को स्वयमेव छदो का रूप निश्चित करने को छोड दिया है। परिणाम कैसा हुआ है, यह आप बताएँ। क्या आप चाहते हैं कि 'मधुशाला' 'हलाहल' के छद में होती या 'निशा निमत्रण' 'मिलन यामिनी' के छदो में होता? यदि नही, तो मेरे भाव-विचारो और मेरे छदो में किसी प्रकार के अनिवार्य सबध में आपको विश्वास होगा। जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, अगर हम भाव-विचार की एकता को सब प्रकार की कविता की आतरिक आवश्यकता मान लें तो उसके केवल बाह्य रूप के आधार पर मैं प्रस्तुत पुस्तक की रचनाओ को 'विपम लय' की रचनाएँ कहना उचित समझूँगा। पर अपने स्वभाव-वैपम्य से एक नए नाम से आपको क्यो चौकाऊँ। आगे आपके परिचित 'मुक्त छद' का ही प्रयोग करूँगा। नाम में क्या धरा है!

तुकात छद, जिसकी पक्तियो में मात्रा और लय की समता हो और अत में तुक हो। अतुकात छद, जिसकी पक्तियो में मात्रा और लय की समता तो हो, पर तुक न मिलता हो—जिसका उपयोग मैंने 'मैकवेथ' और 'ओथेलो' के अनुवाद में किया है। मुक्त छद, जिसकी पक्तियो में मात्रा और लय की समता रूढि न बन गई हो और न तुक पर ही आग्रह हो।

चाँद और बिजली की रोशनी

मैंने देखा था,
तुमने भी तो देखा था,
जब चाँद हमारे घर के अदर आया था,
जब सचमुच चाँद हमारे घर मे आया था।

बिजलीघर का
कुछ ऐसा पुर्जा टूटा था,
सड़कें थी पड़ी अँधेरी,
घर थे अधकार में खडे,
गडा सपूर्ण नगर था
तम मे, गम में,
उजियाले के साथ जिदगी, खुशी जुडी है।

हम पिछली बार
झगडकर ऐसे अलग हुए थे,
इतना कटु-अप्रिय कहकर
थी मुझको आशा नही
कि तुम फिर आओगी
मेरे घर मुझसे मिलने को।
उस अधकार ने

भगवान पाणिनि ने कहा है—"छन्द पादौ तु वेदस्य" अर्थात् छद वेद के चरण है, उनके बल वह चलता है, आगे बढता है। 'हरिवंश पुराण' मे जहाँ वाराह भगवान के विराट रूप का वर्णन किया गया है वहाँ भी उनके चरणो को छद कहा गया है, एक स्थान पर, छद ही उनके मार्ग है, ऐसा भी है। छद वास्तव मे सब प्रकार की शब्दाभिव्यक्ति के चरण है। लय उनकी गति है। तुक को उनका विश्राम कह सकते है। पद्य मे ही नही, गद्य में भी एक प्रकार की लय होती है और विभिन्न लेखको के गद्य की लय अलग होती है। सेन्ट्सबरी ने अग्रेजी मे गद्य की लय पर एक विस्तृत पुस्तक ही लिखी है। हमारी बातचीत मे भी लय होती है, हम विभिन्न भावो-विचारो के लिए विभिन्न लयो का उपयोग करते है—बिना उसके प्रति सचेत हुए ही।

तुकात छद, जैसे भावनाओ का नृत्य है, जिसमे चरण निश्चित लय पर उठते-गिरते और तुक के सम पर पहुँचकर रुक जाते है। अतुकात छद प्रयोजनार्थ कही जाने के समान है। जब तक ध्येय न प्राप्त कर लिया जाय तब तक रुकने की कोई जगह नही, बराबर चले जाओ। मुक्त छद किसी आपाती स्थिति मे किसी अज्ञात प्रदेश को पार करना-सा है जहाँ मनुष्य कभी तेज चलता है, कभी धीमे, कभी दाएँ देखता है, कभी बाए और कभी मुडकर पीछे। उसे रास्ते की खोज भी करनी होती है, रास्ते पर बढना भी होता है। उसे पता नही रहता कि वह कहाँ जा निकलेगा। जीवन भावनाओ का सामजस्यपूर्ण नर्तन भर नही, और न ऐसा स्थान ही जहाँ हर लक्ष्य स्पष्ट दिखलाई देता है, जिसकी ओर आदमी बस अपना कदम बढाता चला जाय। बहुत सी आपाती स्थितियो का सामना भी यहाँ करना पडता है। यदि काव्य जीवन का प्रतिबिम्ब है तो इसमें तुकात छद, अतुकान्त छन्द और मुक्त छद सबकी सार्थकता है।

मुक्त छद म मेरी पहली रचना थी—'बगाल का काल', जो सन् १९४३ में लिखी गई थी और सन् १९४६ मे प्रकाशित हुई। आपको एक मजे की बात बताऊँ। मैने कविता लिखनी मुक्त छद मे ही आरभ की थी। मेरी उम्र चौदह-पद्रह वर्ष की होगी। उस समय कलकत्ता से निकलने

पत्रहीन वृक्षो पर,
पुष्पहीन वृन्तो पर,
तृणविहीन धरती पर,
शस्यहीन परती पर,
सूखे हुए खेतो पर,
झुलसे हुए बागो पर,
मुर्झाए चेहरों पर,
नीरस लय-रागो पर,
देखोगे चमत्कार।

तुमको मालूम नही
डाले क्यो पत्रहीन,
पौधे क्यो पुष्पहीन,
परती क्यो शस्यहीन,
धरती क्यो मनमलीन,
उपवन क्यो श्रीविहीन,
जन-मानस क्यो उदास,
गीत-गीत, रुद्धकंठ,
राग-राग, रुद्धश्वास।

वेदना जब जगती है,
ऊपर उमगती है,
पत्र कही,
पुष्प कही,

वाले हिंदी के हास्य रस के पत्र 'मतवाला' की बडी धूम थी। खेद है कि हिंदी में हास्य रस का फिर ऐसा पत्र नही निकला। उन दिनो 'मतवाला' में श्री सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला' की कविताएँ मुक्त छद में प्रकाशित होती थी। मुझे उस समय न छद-ज्ञान था, न मात्रा-ज्ञान, पर कविता लिखने की सुगबुगाहट मन में हुआ करती थी। मुक्त छद की कविता ने जैसे मेरे रास्ते की रुकावटें हटा दी। जब विना छद, विना सम लय-मात्रा के कविता की जा सकती थी और वह सम्मानपूर्वक पत्रो में छप सकती थी, तो मेरे ही लिए क्यो छद-मात्रा का ज्ञान ज़रूरी हो। उस समय छपी हुई हर चीज वेदवाक्य के समान प्रामाणिक मालूम होती थी। जो मन में भाव हो, छोटे-बडे वाक्यो में, ऊपर-नीचे लिखकर व्यक्त कर दिया, बस कविता हो गई। उस समय कविता लिखने को मेरे पास कागज़ भी नही होता था। कभी आधा पेज गणित की कापी से फाडा, कभी एक पेज इमला की कापी से—कभी कागज छोटा, कभी बडा, कभी मोटा, कभी पतला। और मेरी कविता और पक्तियो का आकार-प्रकार मेरे कागज़ के आकार-प्रकार पर निर्भर करता था। कभी-कभी तो महाकवियो की रचनाएँ भी कागज़ की माप से अनुशासित होती हैं। ईट्स ने अपनी वृद्धावस्था में लघु पक्तियाँ लिखने में अद्वितीय सफलता प्राप्त की थी। इसका एक रहस्य डबलिन में उनके निजी पुस्तकालय में उनकी पाडुलिपियो को देखकर खुला। अपने यौवन में वे रजिस्टर के साइज़ की मोटी कापियो का उपयोग करते थे। वृद्धावस्था में जब मोटी कापियो का उठाना कठिन था तब वे अपने बिस्तर पर लेटे-लेटे लिखने के लिए छोटी-छोटी नोटबुको को इस्तेमाल करते थे। छोटी पक्तियाँ लिखने का क्या एक कारण यह भी नही हो सकता कि उनके सामने छोटा कागज़ था? खैर। उन दिनो मैंने दर्जनो कविताएँ लिखी थी। एक सूत से सबको नत्थी कर लिया था। खास-खास दोस्तो को सुनाता भी था। कविताएँ तो मुझे एक भी याद नही, पर उनमें कुछ भाव-चमत्कार था, जिनसे मेरे मित्रो को आह्लाद होता था और इससे मेरे अह को थपकी-सी मिलती थी। यह अनुभव मुझे नही भूला है। यह तो अच्छा हुआ कि मुझे छपास

उससे मैं
पत्थर पर, चट्टान पर
सिर्फ कुछ लकीर लगा सका हूँ,
कुछ सूराख बना सका हूँ।

लेकिन जब तक
मेरा दम नही टूटता,
मै हताश नही होता,
मुझसे मेरा कलम नही छूटता,
मेरा सरगम नही छूटता।

सृष्टि की दुर्घटना है
और मेरे पेट पर
जीवन का पहिया है,
लेकिन जो मुझमे था
देव बल,
दानव बल;
मानव बल,
आत्म बल,
पशु बल—
सबको समेटकर
मैंने उसे पकडा है,
पजो में जकडा है।

का रोग नही लगा था, नहीं तो न जाने किन-किन सपादकों को मेरी रचनाओ से अपनी रद्दी की टोकरी भरनी पडती। कुछ दिनो के बाद, पता नही क्यो मैने ऐसी रचनाएँ बद कर दी और आगे के मेरे अभ्यास केवल तुकात छदो में हुए।

१९२९ से १९४२ तक का मेरा लिखा जो कुछ प्रकाशित हुआ है वह सब तुकान छदो मे है।

१९४३ के प्रारभ मे बगाल के अकालका हृदय-विदारक विवरण पत्रो मे आने लगा। बगाल की दयनीय दशा पर मैं इतना विचलित नही हुआ जितना उसकी नपुसक सहिष्णुता पर जिससे उसने मानवी स्वार्थ-प्रेरित इस दानवी ईति-भीति मण्ट मारकर झेल लिया।

और जब मैंने अपनी व्यग्रता और अपने आवेश को वाणी देने का प्रयत्न किया तो दस-बारह बरस की आदत और अभ्यास के बावजूद छदो की सारी कडियाँ तडकतर टूट गई। विपय नया था, उद्भावना नई थी, दृष्टिकोण नया था। मुझे आश्चर्य नही हुआ कि मेरी अभिव्यजना ने एक नया बाना धारण किया।

'बगाल का काल' को जिसने भी सुना, पसद किया। तीन वर्ष मैंने इसे यत्र-तत्र मित्र-गोष्ठियो मे ही सुनाया—उस दमन-सत्रस्त काल में कौन प्रकाशक इसे छापकर मुसीबत मोल लेता! मुझे इस बात का सतोप हुआ कि मुक्त छद में यद्यपि मैंने पहली बार लिखा, तो भी असफल नही हुआ। उन्ही दिनो की एक और समस्या मेरा मानस-मथन किया करती थी—मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माँग। इसके विरुद्ध, मैं, 'बगाल का काल' के समान, एक लबी कविता लिखना चाहता था। भारत के उस समय के वायसराय लार्ड वैवेल ने एक बार कहा था कि भारत भौगोलिक दृष्टि से एक है और उसका विभाजन नही हो सकता। इससे कुछ आशा बँधी थी कि अग्रेज सभवत पाकिस्तान के निर्माण के लिए सहमत न होगे। तभी मेरे एक बगाली मित्र ने बग-भग पर रवि बाबू की एक रचना मुझे सुनाई थी, 'विधिर बधन काटवे तुमि एमन शक्तिमान!' उससे प्रेरणा पाकर मेरी

कल्पना इस प्रकार चली कि भारत की भौगोलिक एकता भी एक प्रकार का विधि-बंधन है जिसे कोई खंडित नहीं कर सकता। मैं यह जानता था कि भारत-विभाजन के लिए जो शक्तियाँ तत्पर हैं, उनके विरुद्ध किसी कवि की पंक्तियाँ नहीं खड़ी हो सकती। फिर भी मैंने 'बंगाल का काल' के आकार की मुक्त छंद में एक रचना लिखी। पाकिस्तान बनने पर मैंने उसे नष्ट कर दिया।

१९४४ के बाद से कभी-कभी मेरे मन में इस प्रकार की भावनाएँ उठती थी, जिन्हे, लगता था, मैं गीतों मे नहीं बाँध सकूँगा और मुक्त छंद ही उनके लिए उपयुक्त माध्यम है। पर उनकी संख्या सात-आठ वर्षों में भी सात-आठ के ऊपर नहीं गई।

१९५२ में मैं केम्ब्रिज चला गया। वहाँ डब्ल्यू०बी० ईट्स पर अनुसंधान करने के संबंध में मुझे आधुनिक अंग्रेजी कविता का विशेष अध्ययन करना पड़ा। शायद बहुत लोगों की ऐसी धारणा है कि आधुनिक अंग्रेजी काव्य सब मुक्त छंद में ही लिखा जा रहा है। बात ऐसी नहीं है, हाँ यह ज़रूर मानना पड़ेगा कि आधुनिक समय में काव्य के क्षेत्र में अधिक तत्त्वपूर्ण बातें मुक्त छंद के माध्यम से ही व्यक्त की गईं। पर देखते ही देखते पासा पलट गया है और फिर लेखकों की रुचि छंदमय काव्य की ओर बढ़ रही है।

इंग्लैंड में स्वाध्याय से मुझपर यह बात और दृढ़ हुई कि कुछ विषय, कुछ उद्भावनाएँ, कुछ विचार करने की प्रक्रियाएँ ऐसी हैं जो मुक्त छंद में ही प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त की जा सकती हैं। विदेश-प्रवास में मैंने ८-१० मुक्त छंद की कविताएँ लिखी, जिनमें 'बुद्ध और नाचघर' और 'चोटी की बरफ' प्रमुख हैं। इनमें से कई सर्वप्रथम मैंने बी० बी० सी० (लंदन) से प्रसारित कीं। पर मैंने लगभग १०० गीत भी लिखे। इस संग्रह की बाकी ८-१० कविताएँ मैंने देश वापस आने पर लिखी—कुछ प्रयाग मे, कुछ दिल्ली में। इनमें से 'पपीहा और चील-कौए' की ओर लोगों का ध्यान विशेष आकृष्ट हुआ। यह सर्वप्रथम 'कल्पना' मे छपी थी और मैंने इसे दिल्ली रेडियो की एक कवि गोष्ठी में सुनाया भी। इस गोष्ठी की आलोचना

मे स्वनामधन्य 'उग्र' जी ने एक लेख दैनिक 'हिंदुस्तान' मे लिखा था और उस कविता के बारे में कुछ ऐसी बाते लिख दी थी कि उसकी ओर लोगो की विशेष जिज्ञासा बढी। इस प्रकार सन् १६४४ से '५७ तक की ये अट्ठाइस कविताएँ, मुक्त छद की, इस सग्रह में दी जा रही हैं।

कविताओ के साथ मैंने रचना-काल नही दिया। वे यहां करीब-करीब रचनाक्रम मे रक्खी गई हैं। करीब-करीब, इसलिए कि बीच-बीच मे प्रसगानुसार उलटफेर भी कर दिया गया है।

रचना की तकनीक पर मैं अपने पाठको के साथ बाते करना ठीक नही समझता। भोजन के लिए बैठे अतिथियो को पाक शास्त्र पर व्याख्यान देना मेजबान को नही फबता। जैसा कि मै पहले भी कह चुका हूँ, किन्ही भाव, विचार एव कल्पना को व्यक्त करने के पहले मै इसपर ध्यान नही देता कि वह अभिव्यजना मे क्या आकार-प्रकार ले। मै कथ्य को स्वय कथन मे अवतरित होने के लिए छोड देता हूँ। मै सुरुचिसपन्न पाठक से प्रत्याशा करूँगा कि वह कथ्य और कथन को देखे और परखे। जहां वह एक को दूसरे से अलग न कर सकेगा, जहाँ एक दूसरे का पूरक होगा, जहां एक का दूसरे से अनिवार्य सबध होगा, वहां मै अपने को सफल समझूंगा। वास्तव में काव्य की सफलता इसीमें तो है कि कवि ने जिन भावो को व्यक्त करने के लिए रचना की है, रचना से वही भाव पाठक के मन में जाग सकें। यह तभी सभव हो सकता है जब कथ्य और कथन के बीच अनिवार्यता हो।

इतना विश्वास तो मैं अपने पाठको को दिलाना ही चाहूँगा कि मुक्त छद में भी प्रयोग करने की दृष्टि से मैंने ये कविताएँ नही लिखी हैं। जैसे 'बगाल का काल' लिखते समय, वैसे ही इन कविताओ को लिखते समय, मुझे यह अनुभव हुआ कि ये छदो में नही बँध सकेगी। मेरी छदबद्ध कविताओ से आप परिचित हैं, दोनो की तुलना कर कारण का पता आप लगा सकते हैं।

काव्य-निर्णय में परपरा से मान्य कविता की बडी महत्ता है। प्रत्येक

युग की नई कविता को काव्य के कुछ ऐसे गुण तो रखने ही पडते हैं कि परपरा से मान्य कविता किन्ही समानताओ के आधार पर उसे अपने गोल में बिठला ले, साथ ही उसे काव्य की परिधि भी बढानी पडती है। छदबद्ध कविता के सबध में काव्य-प्रेमी पाठक अपना निर्णय सरलता से दे सकता है। मुक्त छद के सबध में अभी उसका निर्णय शिथिल है, क्योकि परम्परा यहाँ सहायता देने में असमर्थ है। नई चीज को केवल हँसकर उडा देने की अवस्था तो शायद समाप्त हो चुकी है, पर अविश्वास की दशा अब भी चल रही है। अविश्वास की इस अवधि पर आश्चर्य होता है, जब हम देखते है कि मुक्त छद की पहली कविता आज से लगभग चालीस वर्ष पूर्व लिखी गई थी। हमारी निराशा का मुख्य कारण शायद यह है कि हम अपने यहाँ की प्रतिक्रिया की तुलना इग्लैड की प्रतिक्रिया से करते है। पर इग्लैड में मुक्त छद की कविता की भी पुरानी परपरा है।

यो तो अमरीका के १९वीं सदी के कवि वाल्ट ह्विटमन (१८१९-१८९२) को मुक्त छद में कविता लिखनेवालो का अगुआ माना जाता है, पर आधुनिक अग्रेजी कविता के प्रेरक केवल वे ही नही है। वाल्ट ह्विटमन अमरीकनो की मानसिक स्वाधीनता का डका पीटना चाहते थे। उनका आवेश छदो के बध तोडकर फूट पडा। आधुनिक अग्रेजी कविता का स्वर आवेश-प्रमत्त का नही, गम्भीर विचारक का है, वह ऐसे वक्ता का है जो ऐसे अनुभवो को वाणी दे रहा है जो उसके ही नही उसके साथियो के भी हैं, वह कैसे किसी बात को बढा-चढाकर कहे—कवित्व की गरिमा से कहना दूसरी चीज है, वह ऐसे व्यक्ति का है जो अपने अतर्द्वन्द्वो के विश्लेषण में अपने युग, अपने समाज का विश्लेषण कर रहा है, अथवा जग-जीवन की विविध असबद्धता में सबध खोज रहा है। इसको व्यक्त करने के लिए एक ऐसी शैली की आवश्यकता होती है जिसमें वार्तालाप की स्वाभाविकता हो, जीवन की साँसो का उतार-चढाव हो, फिर भी वह भाव और विचार की विदग्धता से इतनी अनुप्राणित हो कि गद्य के धरातल पर गिरकर निर्जीव और लिलपट न हो जाय। वार्तालाप की स्वाभाविकता का गुण

अंग्रेज़ी काव्य मे उसके अतुकांत छंद (ब्लैंक वर्स) के नाटकों मे आया, जिसका पुष्कल भंडार सोलहवीं सदी के लेखकों ने प्रस्तुत किया था। सत्रहवी शताब्दी मे जब अतुकांत छंद के साथ पर्याप्त स्वतंत्रता ली गई तब इस गुण की वृद्धि ही हुई, जिसको बहुत समय तक नही समझा गया, वरन् इस प्रवृत्ति में अनुकांत छंद का ह्रास ही देखा गया। सत्रहवीं शताब्दी में गीतो मे भी एक महाकवि ने क्रांति उपस्थित कर दी थी। उसका नाम जॉन डन है। उसके पूर्व अंग्रेज़ी गीतों के मुख्य दो गुण समझे जाते थे— ओज और माधुर्य। जॉन डन ने अपने गीतों में भावों और विचारों की विदग्धता को वार्तालाप की सजीवता, स्वाभाविकता और सरलता से व्यक्त किया। पर दो सौ वर्षों तक उनकी इस विशेषता की उपेक्षा हुई। बीसवीं शताब्दी मे जब इलियट तथा अन्य कवियों ने मुक्त छंद के माध्यम की महत्ता पहचानी तो उन्होंने सत्रहवी सदी के नाटककारों और जॉन डन की दुहाई दी। अंग्रेजी की मुक्त छंद की रचनाएँ पढते हुए साहित्य से परिचितों को न जाने कितनी पुरानी, पहचानी ध्वनियों की प्रतिध्वनियाँ आती हैं, जिनसे केवल इतना ही नही होता कि नई चीज़ आकर धक्के की तरह नहीं लगती बल्कि उसका अर्थ-गौरव बढ जाता है। मैं उच्च कोटि के मुक्त छंद की बात कह रहा हूँ। बड़ों की स्वाधीनता प्राय छोटों की उच्छृंखलता बन जाती है। आधुनिक अंग्रेज़ी मुक्त काव्य मे भी बहुत कुछ ऐसा है जिसकी हिमायत नहीं की जा सकती और जो पाठकों को नहीं छूता, पर उसकी नवीनता मे कुछ ऐसा आकर्षण है कि अंधानुकरण के लिए वह बरबस आमंत्रित करता है। हिंदी के मुक्त छंद को अपनी काव्य-परंपरा मे कहीं आधार नही मिलता। यों तो किसी समालोचक ने श्री सुमित्रानंदन पंत के 'उच्छ्वास' (१६२२) मे भी स्वच्छंद छंद देखा था। पर पंत जी का 'स्वच्छंद छंद' छंदों को मिश्रित करने तक ही परिमित था। श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का मुक्त छंद बँगला मे आया और बँगला में संभवत वाल्ट ह्विटमन से। बंग-भंग और स्वदेशी आंदोलन के दिनों मे ह्विटमन की आवेशमयी शैली ने विरोध का नारा बुलन्द करने के साथ-

साथ छदो का वधन तोडने में भी सहायता दी होगी। बँगला मुक्त छद की बहुप्रचलित शैली अक्षरमात्रिक थी जो लघु-दीर्घ पक्तियो को प्रायः तुकों से जोडती थी। निराला जी की रचनाओ मे ह्रस्व-दीर्घ-मात्रिक और एक प्रकार के वर्णिक के भी उदाहरण मिलेंगे। एक प्रकार का वर्णिक, जिसमें कुछ ह्रस्व-दीर्घ मात्राओ का सघट एक पैटर्न (नमूना-सा) बन जाता है और बराबर, या थोडे-बहुत विपर्यय के साथ, उसकी आवृत्ति होती जाती है। अब तक इन्हीके शुद्ध अथवा मिले-जुले आधार पर हिंदी की मुक्त छद की कविता लिखी जाती रही है।

गत वर्ष श्री महाराजकृष्ण रसगोत्र की कविताओ का सग्रह प्रकाशित हुआ—'दो परतें', जिसकी भूमिका में मैंने उनके मुक्त छदो में प्रयुक्त एक नई प्रकार की लय की ओर हिंदी पाठकों का ध्यान आकर्षित किया। यह लय थी उर्दू के शेरो की, जिन्हे, जैसे गलाकर, उन्होने अपनी पक्तियो में ढाल दिया था। ध्येय था उनका—वार्तालाप की स्वाभाविकता, सजीवता और प्रवाह लाना। हिंदी पद्यो में बोलचाल की लय का अभाव देख उन्होंने यह काम उर्दू के शेरो से लिया। इसमे उनकी पक्तियो में एक विशेषता, नाटकीयता एव गति आई। उर्दू की लयो से हमारी मात्राओं के कसे वधन कुछ ढीले किए जा सकेंगे।

निराला जी अपने प्रयोगो में बहुत काल तक एकाकी ही रहे। कारण शायद यह था कि काव्य के परपरागत गुण, माधुर्य (जैसे 'जुही की कली' में) और ओज (जैसे 'शिवाजी का पत्र' में) उनके मुक्त छदो में भी मुखरित होते रहे। और तीन दशक तक लोग इसी तर्क-वितर्क में पडे रहे कि जो उन्होने मुक्त छद में कहा है, क्या उसे अधिक सुदरता से छदबद्ध कविता में नही कहा जा सकता? मुक्त छद में ही उन्हें व्यक्त करने का आग्रह करना क्या उनकी सनक नहीं है? जनता को दोष नही दे सकते, परपरा के अभाव में नवीनता उन्हे धक्का भर देती थी, भावनाओ की सूक्ष्म शिराओ को अछूती छोड देती थी। ऐसी कविताएँ सुनाते समय लोगो में पर्याप्त उत्साह न देख वे अक्सर कहते थे, "इसमें अग्रेजी सगीत है।" और

उस समय अग्रेज नाम से जुडी हुई हर चीज लोगो को आतकित तो कर ही देती थी ।

पर उनकी बाद की कविताएँ देखकर मेरी ऐसी धारणा हो गई थी कि वे मुक्त छद को माधुर्य और ओज की अभिव्यक्ति तक सीमित नही रखना चाहते । विषय, प्रतिपादन, दृष्टिकोण आदि की विविधता उनकी बाद की रचनाओ मे सहज ही देखी जा सकती है । उनकी ओज-शैली का विकास श्री शिवमगल सिह 'सुमन' की कुछ रचनाओ मे दिखाई पडेगा, जैसे 'युग-सारथी' में । मुक्त छद को आत्म-चिता और चितन का माध्यम बनाने में श्री सच्चिदानद हीरानद वात्स्यायन 'अज्ञेय' के प्रयोग सफल समझे जायेंगे ।

निराला जी के समकालीनो में श्री सियारामशरण गुप्त के मुक्त छद के प्रयोगो की चर्चा मै इसलिए करना चाहूँगा कि उन्होने उसका उपयोग वर्णनात्मक अथवा कथात्मक कविताओ के लिए किया । इस दिशा मे कोई दूसरा नाम मेरे दिमाग में नही चढ रहा है।

और आज तो गीतपरक कविताओ के लिए मुक्त छद का उपयोग जोरो से हो रहा है। गीत के साथ गाने का सबध छोडकर, मै उसे उन सब कविताओ के लिए प्रयुक्त कर रहा हूँ जिनमें विचारो या भावनाओ की एकता हो ।

लेकिन मुक्त छद के विकास की दिशा में सबसे अधिक महत्त्व मै उन नाटको और रेडियो-रूपको को देता हूँ जिनमें मुक्त छद का उपयोग हुआ है, जैसे श्री धर्मवीर भारती के 'अधा युग' में । जीवन की ऐतिहासिक अथवा सामाजिक परिस्थितियो के सदर्भ मे मुक्त छद जीवन की उन काव्यमय लयो को मुक्त कर सकेगा, जो अभी तक छदो की नियमबद्ध बेडियो में बद थी। इनसे वही काम हो सकेगा जो अँग्रेजी में सत्रहवी सदी के नाटयकारो ने किया । मै ऐसा समझता हूँ कि अतुकात छद में किए गए मेरे शेक्सपियर के नाटको के अनुवाद भी इस दिशा मे सहायक सिद्ध होगे । मुक्त छद के नाटको की ओर झुकने से एक और बडी बात यह होगी कि आज के बहुत

से नए कवि उस अह और आत्मकुंठा के गर्त से बाहर निकल सकेंगे जिसमें पड़े वे तरह-तरह के उक्ति-वैचित्र्य से दुनिया का ध्यान अपनी ओर खींचना चाहते हैं पर उनका स्वर उन्हींके कानों में गूंजकर मिट जाता है। वे अपने ही लेखक है, अपने ही पाठक है।

अगर मुक्त छद को यह समझकर अपनाया जाय कि जीवन की कुछ-कुछ क्यो, बहुतसी ऐसी समस्याएँ है जो केवल उसके द्वारा ही मुखरित की जा सकती है तो उसके विकास और विविधता की सभावनाएँ असीमित है। पत जी मुझे क्षमा करेंगे यदि उनकी पक्ति को जरा बदल कर कहूं। छद तो सीमित है पर

'मुक्त लय का क्या कही अवसान है!'

मुक्त छद के द्वारा गद्य और काव्य की भाषा का विपर्यय भी घटाया जा सकता है। बड़े साहित्यो के इतिहास इस बात के साक्षी है कि किसी भी युग में उनके ऊँचे काव्य और ऊँचे गद्य की भाषा में एक तरह का साम्य रहा है। हिंदी में यह कमी दोष की श्रेणी में आ चुकी है। कभी गद्य-काव्य ने दोनो के बीच सेतु बनाने का प्रयत्न किया था, पर वह गद्य को काव्य और काव्य को गद्य के समीप लाने में सफल नही हुआ। अब गद्य-काव्य नही लिखा जा रहा है—मर चुका है, और सुना है कि किसीने उस पर कोई थीसिस लिखकर उसकी अत्येष्टि भी कर दी है।

गद्य-काव्य का स्थान मुक्त छद ले सकता है। लेकिन मैं देखता हूं कि तुकात हिंदी कविता से तो छायावाद की कोशवासिनी, सस्कृतमयी, दुरूह, अमूर्त पदावली हट गई है, पर हमारे मुक्त छद पर वह अब भी छाई है। कारण शायद यह है कि इसके द्वारा काव्य का व्यक्तित्व अलग रखने का प्रयत्न किया जाता है। जहाँ यह एकदम छोड़ दी जाती है वहाँ रचना के गद्य के धरातल पर उतर आने का भय रहता है। मैं इसको कवित्व लाने का कृत्रिम साधन समझूंगा। यह तो कवियो के सोचने की बात है कि भाषा में गद्य से दूर न जाकर भी वह कौन सा ऐसा गुण है जिसे लाने से छद-मुक्त पक्तियो को गद्य न समझा जायगा। इसके लिए कवित्व के कही अधिक

विशुद्ध स्वरूप की खोज करनी होगी।

मुक्त छंद में लिखनेवालों का एक और भ्रम मैं दूर करना चाहूंगा कि इस प्रकार की कविता अकेले में बैठकर आंखों से पढ़ने के लिए है। गंभीर से गंभीर कविता को स्वर से तलाक दिला देने की बात मेरे मन में नहीं बैठती। चश्मे के संबंध में आंख और नाक की मनोरंजक बहस के बारे में आपने सुना होगा। कविता आंखों के लिए है—इसे मैं उतना ही उपहासास्पद समझता हूं जितना इस कथन को कि चश्मा नाक के लिए है। कविता कान के लिए है, कंठ के लिए है। मुझे कुछ उच्च कोटि की मुक्त छंद की अंग्रेजी कविताओं को सुनने का अवसर मिला है और उसकी रसानुभूति छंदमय कविता से मुझे किसी अंश में कम नहीं प्रतीत हुई।

पाठकों और श्रोताओं से मैं कहूंगा कि नई शैली, नई तकनीक द्वारा व्यक्त होनेवाली नई चेतना का वे स्वागत करें। कम से कम उसके प्रति वे जिज्ञासु हों। साहित्य में शैली का परिवर्तन जीवन के भौतिक और मानसिक क्षेत्रों में परिवर्तन की सूचक निशानी है। कवियों से मैं कहूंगा कि जनता नवीन चेतना और अनुभूतियों के प्रति उतनी उदासीन नहीं रहती जितना उसे समझा जाता है। केवल शैली की विचित्रता से वह धोखा भी नहीं खाती। आपकी भावना, विचारावली, चेतना, अनुभूति, कल्पना—एक शब्द में—प्रेरणा के अश्व व्यग्र हैं तो उन्हें नवीन शैली के रथ में जोत दीजिए। जनता आकर उसमें बैठेगी, आपके साथ चलेगी। आप नवीन शैली का रथ खड़ा कर लेखनी से उसे ठेलना चाहेंगे तो वह आपके प्रति उदासीन रहेगी, आप पर हंसेगी।

अपनी कविता के विषय में स्वयं कुछ कहने के बजाय मैं उसके प्रति अपने पाठकों की प्रतिक्रिया जानना चाहूंगा। अपने काव्य-जीवन में मुझे बहुत से ऐसे पाठक और श्रोता मिले हैं जिन्होंने किसी कविता के पीछे किसी व्यक्तिगत प्रसंग को जानने की उत्सुकता प्रकट की है। मुझे आश्चर्य न होगा यदि इन कविताओं में कुछ के प्रति ऐसी जिज्ञासा जागृत हो। इसकी शांति मैं कविता का रस लेने के लिए आवश्यक नहीं मानता। यह तो

निर्विवाद है कि कला में अभिव्यक्ति पानेवाली प्रत्येक अनुभूति व्यक्तिगत ही होती है, पर कला में अभिव्यंजित होने योग्य प्रत्येक अनुभूति को कुछ ऐसा भी होना पड़ता है जो सार्वजनिक हो। जैसा मुझे अनुभव हुआ है, वैसा आपको भी हुआ हो या हो सकता हो। और साथ ही उस अनुभव और अभिव्यक्ति के द्वारा किसी ऐसे सत्य की झलक भी मिल सके जो मेरे-आपके अनुभवों के ऊपर हो, पर हमारी आत्मा उससे एक सूक्ष्म, सहज एवं अनिवार्य संबंध का आभास पा सके। यह आदर्श की बात हुई। इन कविताओं में इस आदर्श से मैं कितनी दूर या कितना पास हूँ, यह तो आप ही बताएँ।

कविताएँ कई दृष्टियों से पढ़ी जाती हैं। पर सबसे स्वस्थ दृष्टिकोण है कि इन्हें आनंद के लिए पढ़ा जाय। और यह तो आपको बताने की आवश्यकता शायद ही हो कि कविता का आनंद इतना उदार है कि वह अपनी परिधि में उन्माद, अवसाद, आवेश, आक्रोश, व्यग्रता, संवेदना आदि-आदि सभी को स्थान दे सकता है। कविता का आनंद है जीवन का एक हलका-सा धक्का—मुझे पहचाना!

इन कविताओं से वह आपको लग सका तो मुझे खुशी होगी।

नई दिल्ली,
१०–७–'५८

—बच्चन

क्रम

आह्वान

ओ जो तुम ताजे,
ओ जो तुम जवान !
ओ जो तुम अधकार मे किरणो के उभार,
ओ जो तुम बूढी नसो में नए खून की रफ्तार,
ओ जो तुम जग मे अमरता के सबूत फिर एक बार,
ओ जो तुम सौ विध्वसो पर एक व्यग की मुसकान,
तुम्हारे ही लिए तो उठता है मेरा कलम,
खुलती है मेरी जवान ।
ओ जो तुम ताजे,
ओ जो तुम जवान !

ओ जो तुम सुन सकते हो अज्ञात की पुकार,
ओ जो तुम सुन सकते हो आनेवाली सदियो की झकार,
ओ जो तुम नए जीवन, नए ससार के स्वागतकार,
ओ जो तुम सपना देखते हो बनाने का एक नया इसान,
तुम्हारे ही लिए तो उठता है मेरा कलम,
खुलती है मेरी जवान ।
ओ जो तुम ताजे,
ओ जो तुम जवान !

ओ जो तुम हो जाते हो खूबसूरती पर निसार,
ओ जो तुम अपने सीनो मे लेके चलते हो अँगार,
ओ जो तुम अपने दर्द को बना देते हो गीतो की गुजार,
ओ जो तुम जुदा दिलो को मिला देते हो छेडकर एक तान,
तुम्हारे ही लिए तो उठता है मेरा कलम,
खुलती है मेरी जबान।
ओ जो तुम ताजे,
ओ जो तुम जवान!

ओ जो तुम बाँधकर चलते हो हिम्मत का हथियार,
ओ जो तुम करते हो मुसीबतो व मुश्किलो का शिकार,
ओ जो तुम मौत के साथ करते हो खिलवार,
ओ जो तुम अपने अट्टहास से डरा देते हो मरघटो का सुनसान,
भर देते हो मुर्दों मे जान,
ओ जो तुम उठाते हो नारा—उत्थान, पुनरुत्थान, अभ्युत्थान!
तुम्हारे ही लिए तो उठता है मेरा कलम,
खुलती है मेरी जबान।
ओ जो तुम ताजे,
ओ जो तुम जवान!

सृष्टि

१

प्रलय
कर सब नष्ट,
सब कुछ भ्रष्ट,
करके सब किसीका अंत,
था चिर शांत ?—
भ्रांति नितांत ।

२

प्रलय मे था
एक अमर अभाव,
उर का घाव,
जो उनको किए था
चिर चपल, चिर विकल, चिर विक्षुब्ध,
उसमे थी कहीं यदि शांति
तो बस एक उसकी याद मे
जो था कभी संसार—
जागृति, ज्योति का आगार,
जीवन शक्ति का आधार,
उसकी भृकुटि का निर्माण,
उसकी भृकुटि का संहार ।

३

सृष्टि, व्याकुलता प्रलय की,
प्रलय के सूने निलय की,
प्रलय के सूने हृदय की,
प्रलय के उर मे उठी जो कल्पना,
वह सृष्टि,
प्रलय पलको पर पला जो स्वप्न,
वह ससार !

पूजा

१

विश्व मदिर मे,
विशाल, विराट, महदाकार, सीमाहीन,
यह क्या हो रहा है।
उड रहा है हर दिशा में धूम,
घूमते हैं अग्नि-पिंड समूह,
कितने लक्ष,
कितने कोटि,
जैसे ज्योति के हो व्यूह,
और उठता
एक अद्भुत गान
अवर मध्य
जो है मौन-सा गभीर।

२

सृष्टि आविर्भूत,
प्रलय के तम तोम से हो मुक्त,
दीपित, पूत,
दग्ध कर नीहार देती धूप,

तप से मत डिग,
तप से मत हिल,
तप ही कर सकता सत्य कभी जो
तेरे मन का सपना!

तप मे जल,
तप मे पल,
तप मे रह अविचल, अविकल।
तप का तू पाएगी फल,
तप निश्चल,
तप निश्छल,
तप निर्मल!

युग घूम-घूमकर आएँ,
तुझको तप मे रत पाएँ,
तप की भी है क्या सीमा?
तप काल नही खा सकता,
बुझ जाय सूर्य,
बुझ जाय विश्व की अग्नि,
कभी तप का प्रकाश
पड नही सकेगा धीमा!

तू महाभाग,
जो तुझमे तप की पडी आग।
तू इसी आग मे
जल,

तू इसी आग में
ढल,
तू इसी आग में
रख विश्वास अटल ।

ले बरसता आज है वरदान,
तू सुखमान,
अब वरदान मे कर स्नान ।
ओ चिर तप्त,
शीत जल मे
तू नहा ले खूब,
फिर-फिर निकल,
फिर-फिर डूब,
कर वरदान-जल का पान ।
शात कर युग-युग-तपी निज देह,
शात कर युग-युग-तपा हर अग,
फिर-फिर सूख,
फिर-फिर भीग,
और सचित कर
बडे तप से मिला वरदान का
यह मेह,
स्वर्गिक स्नेह !

शोणित की प्यास

१

तृपित गगन है,
तृपित अवनि है,
तृपित उदधि है,
उस शोणित की प्यास प्रबल से,
नौजवान के उस शोणित की,
जिसकी बूंद-बूंद के ऊपर,
माता की, ममता से निर्मित,
करुणा-सिंचित, स्नेह-निमज्जित,
दया-मया से पल-पल पुलकित,
मोह-छोह से क्षण-क्षण विगलित,
चिर वत्सलता से कहराती,
छाती की पय-धार निछावर,
और पिता का श्रमकण-निर्झर,
दोनो के आँसू का सागर।

२

तृपित व्योम है,
तृपित भूमि है,
तृपित सिन्धु है,

उग शोणित की प्यास अटल से,
नौजवान के उग शोणित की,
जिसकी बूंद-बूंद के पीछे
मानवता के सघर्षो का
चिर-उज्ज्वल इतिहास छिपा है
जिसकी बूंद-बूंद के अदर
मानवता के नवोत्थान की,
मानवता के नव विधान की,
दुर्द्धर, दुर्जय शक्ति छिपी है,
और छिपा, बल, विक्रम, पौरुप।

२

तृपित अनिल है,
तृपित सलिल है,
तृपित धरा की
धूलि कुटिल है,
उस शोणित की प्यास अमिट से,
उस शोणित की,
जो कि जवानो की नव चेतन
छाती की बन दुर्दम धडकन
विश्व व्याप्त नीरव भापा मे
प्रतिपल उद्घोपित करता है,
"हाड-मास के जिस पजर मे
यह ध्वनि या इसकी प्रतिध्वनि है,

वह मानव तेरे समान है,
तुझ-सा ही उसका दिल, दुख-सुख ।"

४

तृषित साँझ है,
तृषित प्रात है,
तृषित दिवस है,
तृषित रात है,
उस शोणित की प्यास दुरित से,
उस शोणित की,
जो कि जवानी की उमगमय
औ' उदार बाँहो के अदर
लहराता निर्बंध, निरंतर,
और उन्हे इस वसुधा-तल पर
बसे निखिल मानव कुटुम्ब को
आलिगन के अभय पाश में
एक बार ही भर लेने को
प्रेरित करता रहता प्रतिपल ।

५

तृषित प्रकृति है,
तृषित नियति है,
महा तृषातुर
काल पतित है,

उस शोणित की प्यास घृणित से,
उस शोणित की,
जो नवयौवन के नयनो मे
नवोल्लास की, नवोत्साह की,
नवोन्मेषशाली आशा की
प्रखर-ज्योति बन रहता जाग्रत,
भेद भविष्यत के भीपणतम
तिमिर तोम को, मानवता की
सतत प्रतीक्षा में विरहाकुल
दैवी युग का स्वप्न देखता !

६

विश्वव्यापिनी, चिरविनाशिनी,
इस तृष्णा से अपनी रक्षा
करने को व्याकुल मानवता,
मुझे बता तू क्या करती है ?
मुझे बता क्या कर सकती है ?

हिंदू और मुसलमान

ओ जो तुम हिंदू,
ओ जो तुम मुसलमान,
ओ जो तुम कहलाते हो गांधी के सपूत,
भारत माता की संतान,
ओ जो तुम हिंदू,
ओ जो तुम मुसलमान!

कल तक तुम्हारे बीच बैठे थे अंग्रेज,
जो तुम दोनों को लड़ाने में थे तेज,
क्योंकि तुम्हारी लड़ाइयों से पकड़ता था जोर
उनके साम्राज्यवाद का रथ,
होती थी मजबूत उनकी बाग-डोर,
रौंदा और कुचला जा रहा था हिंदुस्तान।
विदेशी था कितना चालाक,
साफ़ थे हाथ, सारी क़ौम हो रही थी हलाक।
पर अब तो अंग्रेज कर चुके प्रयाण,
अपनी कमजोरियों के लिए उनको देना दोष
क्या अब भी है आसान?
ओ जो तुम हिंदू,
ओ जो तुम मुसलमान,

ओ जो तुम कहलाते हो गाँधी के सपूत,
भारत माता की संतान,
ओ जो तुम हिंदू,
ओ जो तुम मुसलमान !

दुनिया के दुश्मनो को है ज्ञात,
लडनेवाले उतर जाएँ मौत के घाट,
पडे रह जाते है हथियार,
जिन्हे लेकर अपने हाथ
दूसरे करते है, निर्बलो, बेगुनाहो,
बेपनाहो, मासूमो पर प्रहार,
जालिमो की भी होती है जात,
जालिम मरता है, छोड जाता है औलाद,
अंग्रेजो की वह जादू की तलवार
आज पहुँच गई है उनके पास,
जो चाँदी के रथ पर है सवार,
जो कमर मे बाँधते है सोने की म्यान,
देखो खोलकर आँखे, सुनो खोलकर कान,
ओ जो तुम हिंदू,
ओ जो तुम मुसलमान,
ओ जो तुम कहलाते हो गाँधी के सपूत,
भारत माता की संतान,
ओ जो तुम हिंदू,
ओ जो तुम मुसलमान !

दुनिया की सब लडाइयो का
एक ही इतिहास,
एक ही कायदा,
लडनेवालों के कुछ भी नही पडता पल्ले,
बचता नही कुछ भी पास,
उनसे उठाते है तीसरे ही फायदा ।
ओ जो तुम खुदावाले, रसूलवाले,
ईश्वरवाले, ऊँचे उसूलवाले,
अगर तुम करते हो झगडा,
करते हो मारकाट,
तो तुम उनके जीने का करते हो सामान,
धन है जिनका भगवान,
पूँजी है जिनके लिए वेद-कुरान !
ओ जो तुम हिंदू,
ओ जो तुम मुसलमान,
ओ जो तुम कहलाते हो गाँधी के सपूत,
भारत माता की संतान,
ओ जो तुम हिंदू,
ओ जो तुम मुसलमान !

तुम्हारी ख़ास मंजिल है दूसरी ओर,
तुम्हें भटकाने को है
फिरकेवदी का गुल-शोर,
होना मत इन चालो के शिकार ।

जिंदगी और जमाने की है साफ पुकार,
बेकार है तुम्हारा होना हिंदू,
बेकार है तुम्हारा होना मुसलमान,
अगर न रह सके तुम इंसान,
अगर न रख सके तुम इंसान का स्वाभिमान,
अगर न रच सके तुम इंसान के लिए
सुख की जमीन,
स्नेह का आसमान।
ओ जो तुम हिंदू,
ओ जो तुम मुसलमान,
ओ जो तुम कहलाते हो गाँधी के सपूत,
भारत माता की संतान,
ओ जो तुम हिंदू,
ओ जो तुम मुसलमान।

रात का अपराध

स्वप्नो के उनींदे और नशीले
और कही दूर से आते हुए सगीत को
एकाएक चीरते हुए
कानो मे एक तीखी चीख आती है
और फिर वह डूब जाती है
पतझर के रूखे-सूखे पत्रो के
झरने के स्वर मे—
खड-खड़ मे,
खर-खर मे,
पटर-पटर मे ।
और फिर छा जाता है लवा-चौडा सन्नाटा
लवी-चौडी ज़मीन पर,
लवे-चौडे आसमान मे ।

रात ढल चली है,
अँधेरा अभी नही ढला,
नीद उचट गई है,
आँख अभी नही खुली ।

क्या—
उलूकों के दल ने
पेड की नगी बाहों मे,
विभावरी की शिथिल बयार मे,
मद-मद साँस मे,
झूल रहे तृणो के आगार को,
स्नेह के, वत्सलता के,
मोह और ममता के आधार को,
सृष्टि के एक अबोध नवाकार को—
क्योकि अब नही रहे
पात वे हरे-भरे
जो कि उसे रखते थे छिपाकर
दुनिया की नजर से,
तेज नश्तर से—
देख लिया ?
क्या—
वे क्रूर, कठोर, बुभुक्षित
टूट पडे उस निभृत नीड पर—
खुले सब तरफ औ' अनरक्षित ?
क्या उन्होने पैने डैनो की मार से,
नोकदार पजो के प्रहार से,
गिरा दिया उसका
तिनका, तिनका ?
और क्या—

विहग-विहगिनी को,
विहग-कुमारों को,
विहग-कुमारियों को,
जिनके अभी उगे थे न बाल-पर भी,
जो थे केवल चंचुवाले मांस के बस लोथड़े,
दाब लिया अपने
आरे-से करारे तेज़ दाँतों की कतार में ?
औ' उन्हें चबा गए ?
खा गए ?
निगल गए ?
उनकी भयातुर, विवश चीं-पुकार को भी ?
और फिर उड़ गए
किसी दूसरे अभागे नीड़ की तरफ़ ?
उफ़ !
और मारे डर के,
सिहर के,
गिर पड़े पेड़ के
पत्ते भी रहे-सहे !

ध्वनि से भी तेज कभी होती है प्रतिध्वनि ।
आई थी आवाज जो
नीड़ के प्रदेश से,
उनकी प्रतिध्वनि
आती है फिर-फिर

और-और हो के तेज,
जाती है कान चीर,
जाती है प्राण वेध,
मन कुछ जानने को है अधीर ।

ढल गया है अधकार,
हुआ अभी नही प्रात ।
डालो को ढील कर
खडा है गुमसुम-चुपचाप
एक-एक तरुवर ।

पूछता हूँ,
घटना यह दर्दनाक
हुई थी किसपर ?
तरुओ की मौन पाँत
विद्यार्थियो की खडी हो जैसे जमात,
मास्टर के पूछने पर,
किसकी है शरारत ?—
जैसे सबने लगाया
चेहरा भोलेपन का,
किसी एक अपने
साथी के कसूर को
जैसे न बताने की
आपस मे सलाह-सी
कर ली हो सबने ।

मौन गगन,

मूक धरा,

डोलती नहीं है हवा,

प्रकृति पर छाया एक भेद-भरा संताप,

माँ जैसे बैठी हुई बेटे का छिपाए पाप ।

और-और हो के तेज,
जाती है कान चीर,
जाती है प्राण वेध,
मन कुछ जानने को है अधीर ।

ढल गया है अधकार,
हुआ अभी नही प्रात ।
डालो को ढील कर
खडा है गुमसुम-चुपचाप
एक-एक तरुवर ।

पूछता हूँ,
घटना यह दर्दनाक
हुई थी किसपर ?
तरुओ की मौन पाँत
विद्यार्थियो की खडी हो जैसे जमात,
मास्टर के पूछने पर,
किसकी है शरारत ?—
जैसे सबने लगाया
चेहरा भोलेपन का,
किसी एक अपने
साथी के कसूर को
जैसे न बताने की
आपस मे सलाह-सी
कर ली हो सबने ।

मौन गगन,
मूक धरा,
डोलती नही है हवा,
प्रकृति पर छाया एक भेद-भरा संताप,
माँ जैसे बैठी हुई बेटे का छिपाए पाप ।

कवियो की कौम
होती है बडी बदजात ।
करे ये चाँद-किरन-परियो का गान,
और अगर हो प्रगतिशील,
करे रूस और चीन का बखान,
पर ये घूम-फिरकर
करते है अपनी ही बात ।
कवियो की कौम
होती है बडी ही बदजात ।

तो तुम हुए आज छब्बीस,
आ गया याद मुझे सन तैंतीस,
तब मेरी थी यही उमर,
जब मस्ती से उभर,
गाया था मैने मधुशाला का गीत,
मेरी वाणी को लग गए थे पर,
धरती पर पडते नही थे मेरे पाँव,
चर्चा थी मेरी ठाँव-ठाँव ।
और मै कल्पना के पखो पर आसीन
उडा जा रहा था वहाँ,
जहाँ एक और दो
होते नही तीन ।
पलो को नापती है शताब्दियो की माल,
बूँदो पर होते है निसार

कवि
होता है नबी,
नबी उपदेश देने से नही चूकता,
पड जाती है बान,
अत मे थोडा-सा व्याख्यान ।
जीवन सब दिन नही रहता खेल,
नही तो, प्रकट करना यह चाह—
हँसते-हँसाते,
उछलते-कूदते,
शोर मचाते,
चले जाओ जगती की राह,
लूटते वाह-वाह ।
जीवन एक दिन बनता है भार,
क्योकि प्रकृति करती है मनुष्य का सम्मान,
नियति करती है मनुष्य का सत्कार,
अधिकारी का ही होता है इम्तहान ।
शोर मचाते,
उछलते-कूदते,
हँसते-हँसाते,
अच्छे लगते है
भोले, सुकुमार, अनजान बच्चे,
बडे लगते है मक्कार-भाँड ।
मैने भी देखी है जिदगी,
दुनिया भी ली देख,

जहाँ भी मैंने पाया कोई
माथा नवाने के योग्य,
उनके मुख पर थी चिंता,
मस्तक पर थी रेख।
और देखा भी है मैंने इंसान,
उतना ही भारी था उसके कांधों पर बोझ,
जो था जितना ही महान!

नया चाँद

उआ हुआ है नया चाँद,
जैसे उग चुका है हजार बार।
आ-जा रही है कारे,
साइकिलो की कतारे,
पटरियो पर दोनो ओर
चले जा रहे है बूढे
ढोते जिदगी का भार,
जवान, करते हुए प्यार,
बच्चे, करते खिलवार।
उआ हुआ है नया चाँद,
जैसे उग चुका है हजार बार।
मै ही क्यो इसे देख
एकाएक
गया हूँ रुक,
गया हूँ झुक।

डैफ़ोडिल

डेफोडिल, डैफोडिल, डैफोडिल—
मेरे चारो ओर रहे है खिल,
मेरे चारो ओर हँस रहे है खिल-खिल;
इग्लैंड मे है वसत—है एप्रिल।
इनका देख के उल्लास,
तुलना को आता है याद,
मुझे अजित और अमित का हास,
जो गूंजता है आध-आध मील—
मेरा भर आता है दिल—
डैफोडिल, डैफोडिल, डैफोडिल—
जो गूंजता है हज़ारो मील,
मै उसे सुनता हूँ यहाँ,
हँस रहे है वे कहाँ—ओ, दूर कहाँ !
बच्चो का हास निश्छल, निर्मल, सरल
होता है कितना प्रबल !

सृष्टि का होगा आरभ,
मानव शिशुओ का उतरा होगा दल,
पृथ्वी पर होगी चहल-पहल ।

आल-बाल जब बहुत से हो साथ,
पकड के एक दूसरे का हाथ
हँसी की भाषा में करते है बात ।
उस दिन जो गूँजा होगा नाद,
धरती कभी भूलेगी उसकी याद ?
उसी दिन को सुमिर
वह फूल उठती है फिर-फिर,
फूला नही समाता उसका अजिर ।
आदि मानव का वह उद्‌गार,
निर्विकार,
अफसोस हज़ार,
इतनी चिंता, शका, इतने भय, सघर्प मे
गया है धँस,
कि सुनाई नही पडेगा दूसरी वार,
अफसोस हज़ार !
इतना भी है क्या कम,
उसकी बनी है यादगार,
डैफोडिल का कहाँ-कहाँ तक है विस्तार !

हरे-हरे पौधो,
हरी-हरी पत्तियो पर
सफेद-सफेद, पीले-पीले,
रुपहरे, सुनहरे फूल सँवरे है,
आसमान से जैसे

तारे उतरे है।
आता है याद,
कश्मीर मे डल पर
निशात, शालामार तक
नाव का सफर,
इतने फूले थे कमल
कि नील झील का जल
उनके पत्तो से गया था ढक,
पत्ते-पत्ते पर पानी की बूंद
ऐसी रही थी झलक,
जैसे स्वर्ग से
मोती पडे हो टपक,
सुषमा का यह भडार
देख के, झिझक,
मैने अपनी आँखें ली थी म
बताने लगा था मल्लाह,
बहुत दिनो की है बात,
यहाँ आया एक सौदागर
लोभी पर भोला,
उसे ठगने को किसीका
सेठ से बोला,
ये है कच्चे मोती—कु
लेकर बहुत-सा धन
बेच दिया उसने मोति

यहाँ से वहाँ तक।
सेठ ने महीनो किया इतजार,
लगाता जब भी मोतियो को हाथ,
जाते वे ढलक।
आखिरकार हार,
भर-भर के आह
वह गया मर,
उस पार बनी है उसकी कब्र।
सुदरता पर हो जाओ निसार,
जो उसके साथ करते है व्यापार,
उनके हाथ लगती है क्षार।

डैफोडिल का देख के मैदान
वही है मेरा हाल,
हो गया हूँ इसपर निहाल,
मिट्टी की यह उमग,
वसुधरा का यह सिगार
आँखें पा नही रही है सँभाल।
मेरे शब्दो मे
कहाँ है इतना उन्मेष,
कहाँ है इतना उफान,
कहाँ है इतनी तेजी, ताजगी,
कहाँ है इतनी जान,
कि भूमि से इनकी उठान,

कि हवा मे इनके लहराव,
कि क्षितिज तक इनके फैलाव,
कि चतुर्दिक इनके उन्माद का
कर सके वखान ।
यह तो करने मे समर्थ
हुए थे वस वर्ड्सवर्थ,
कभी पढा था उनका गीत,
आज मन में वैठ रहा है अर्थ ।

पर मै इसे नही सकूंगा भूल,
सदा रक्खूंगा याद,
आज और वर्षो वाद,
कि जव अपना घर, परिवार, देस, छोड
आया था मै इग्लैंड,
केम्ब्रिज में रक्खे थे पाँव,
अजनवी और अनजान के समान,
अपरिचित था जव हर मार्ग, हर मोड,
अपरिचित हर दूकान, मकान, इसान,
कसीसे नही थी जान-पहचान,
तव भी यहाँ थे तीन,
जो समझते थे मुझे,
जिन्हें समझता था मै,
जिनसे होता था मेरे भाव,
मेरे उच्छ्वास का आदान-प्रदान—

डैफोडिल के फूल,
जो देते थे परिचय-भरी मुसकान,
प्रभात की चिड़ियाँ,
जो गाती थी कही सुना-सा गान,
और कैम[1] की धारा,
जो विलो की झुकी हुई लता को छू-छू
बहती थी मद-मद,
क्षीण-क्षीण ।

१—केम्ब्रिज इस नदी पर बसा है।

तुम्हारी नज़रों में वे :
उनकी नज़रों मे तुम ।

मै आया हूँ हिंदुस्तान से,
तुम देखते हो मुझे ऐसे,
जैसे मै आया हूँ चाँद से,
मै आया हूँ हिंदुस्तान से ।

कोट, पतलून, टाई पहन,
सुबह, शाम, रात, दिन,
किए हुए तुम्हारी भद्दी-सी नकल,
(पाता कहाँ से तुम्हारा रग, तुम्हारी शक्ल ।)
आता-जाता था मै बराबर
कालिज, लाइब्रेरी, बार,
स्टेशन, सिनेमाघर, बाज़ार,
कैम के इस पार, उस पार,
पर अपने काम-धाम, दौड-धूप में
तुम्हें कहाँ थी फुरसत
कि देखो तुम मेरी तरफ,
मुझसे भी ज्यादा कालो और गोरो की
यहाँ घूमती रहती है सफ की सफ।

पर आज काली शेरवानी
और सफेद चूडीदार पाजामा
पहन के जो मै निकला हूँ ख़रामा-ख़रामा,
तो मै एक अच्छा, खासा
बन गया हूँ तमाशा।
मर्द, औरतो, बच्चो, बूढो—
सभी की नजर
है बस मुझपर।

मै आया हूँ हिंदुस्तान से,
तुम देखते हो मुझे ऐसे,
जैसे मै आया हूँ चाँद से,
मै आया हूँ हिंदुस्तान से।

बगल मे है 'हाकिन्स'[1],
सामने खडे है दो लडके, चार लडकियाँ,
कर रहे है आपस में बाते,
डाले गलबहियाँ,
बीच-बीच मे सुन पडता है—
'इडियन प्रिंस', 'इडियन प्रिंस'।

बाबा, मै नही हूँ 'इडियन प्रिंस',
न था मेरा बाप, न होगा मेरा बेटा,

---

[1] रेस्ट्राँ और नाचघर का नाम।

शायद इतना और है तुम्हे मालूम
कि वही है कही ताजमहल,
(केम्ब्रिज मे है इस नाम का होटल)
और वही कही है हिमालय पहाड,
जिस पर तुम्हारे कई एक्सपेडीशन
लौटे है खाकर पछाड ।

तुमने क्या जाना है हिंदुस्तान ?
तुमने सुना नही राम का नाम,
जाना नही उनका विमल यश,
उनके नाम का प्रताप,
सीता के जीवन का तप-ताप-अभिशाप,
तुमने सुनी नही कृष्ण की मुरली की तान,
देखा नही गोपियो के साथ उनका रास,
राधा के साथ उनका मान-विहार,
समर मे बहाना ज्ञान की धार—
गीता का व्याख्यान ।
तुमने जाना नही अमिताभ का वैराग्य—
सुख-साज-राज-गृह-त्याग,
खोजना प्रकाश का मार्ग,
यशोधरा का मौन बलिदान ।

तुमने पढे नही हमारे उपनिषद,
जिनमे जीवन का सतोष,

और मरण की शांति—
दोनो पा गया था शोपनहार।
तुमने पढ़ी नही शकुन्तला,
जिसमे धरती और आसमान,
स्वर्ग और नरक,
नियति, प्रकृति और पुरुष,
गेटे ने पाया था सब एक साथ।

परम पुरातन है हमारा देश,
अज्ञात अतीत में है
हमारी संस्कृति का मूल,
कला, संगीत, साहित्य,
न जाने कितनी वार,
नए-नए रूप धार,
उभरे है, बढ़े है,
परवान चढे है,
कि उन्हे इतिहास भी गया है भूल।
अब भी एक नया उन्मेष
बदल रहा है हमारे देश का वेश।
पर तुम तो बैठे हो मानकर
कि वहाँ या है इडियन प्रिंस,
या इडियन जगलर,
या इडियन क्रिकेटर।
तुम सचमुच हो इतने अनजान,

ढालता है शराब, सोडावाटर, बियर,
पालता है कुत्ता, बुलटेरियर,
करने जाता है शिकार,
पीता है सिगार,
और जब देखो तब
बजाता रहता है सीटी,
पढता रहता है अखबार।

रेगिस्तान का सफर

"हमने माना
कि रेगिस्तान के उस पार है वहारिस्तान,
जहाँ है छायादार दरख्त,
रंगदार फूल,
दूर-दूर तक दूब के मैदान,
जहाँ बहती है नीले पानी की नहर,
चलती है ठंडी हवा सर-सर-सर,
करती हुई सौरभ की बौछार,
हर मौसम में, हर वक्त,
मेहरबान है आसमान,
गूँजता है, छोटी-छोटी चिड़ियों का गान,
मुलायम-मुलायम पत्तियों का मर्मर स्वर।
वहाँ टीले पर बैठ
चरवाहा अपनी बाँसुरी पर
छेड़ता है मनुहार-भरी तान,
चरवाहिन करती है मान,—
प्रेम फिर-फिर माँगता है प्रमाण—
ऐसों का ही तो प्यार
रहता है सदा जवान।

और भेडो का झुड
किनारो पर बॉधकर कतार,
झुकाकर गर्दन,
बुझाता है अपनी प्यास,
होता है निहाल
देखकर अपनी परछाई,
मिलते है अधर से अधर,
होता है सबपर मुहब्बत का असर।

ऐसा ख्वाब,
ताज्जुब नही,
जो उठाए दिल मे एक लहर, एक सैलाब।
मगर सोचो तो,
मेरे मीत, अनुभवहीन,
कितने दिन, कितनी दूर, कितनी तकान का है सफर।
भाई-बद,
कुटुब-कबीले,
दोस्त-अहबाब—
इनसे भी कर लो सलाह,
चार आदमी की राय से किए हुए काम का
अच्छा होता है अजाम,
वैसे, सब है आजाद
चलने को अपनी-अपनी राह।"

"इस सपने की

मैंने की है खोज।
नहीं, नहीं, हो रही है गलती,
इन सपनों ने
खोजा है मुझे,
मैं नहीं झुकता इनकी तरफ,
यह मुझे खींच रहा है अपनी ओर,
किसमें है जोर
कि मुझे रोक ले,
रोका नहीं जाता है सैलाब,
थामी कहीं जाती है लहर!
सपनों से कुछ भी नहीं है ताकतवर।
फेंक चुका दाँव,
फेंक दिए डाँड,
दाब दी है नाव,
बाजी हार चुका,
मेरा सफर मुझे पुकार चुका,
दुबधे की हालत थी कल,
आज,
यह रहा मैं—यह रही मेरी मंजिल।
उठाने में कोई भी काम
जिगर का हौसला, जी का उत्साह,
मौजों के समान देता है उभार,
देता है उछाल,
बढ़ा भी ले जाता है कुछ दूर,

लेकिन फिर
पॉवो तले होती है धरती कठोर,
सिर पर होता है आसमान क्रूर,
हिम्मत का, दोनो ही लेते इम्तहान,
कुछ भी परवाह नही,
अकेला भी बहोत बडा है इसान !
जब आसमान बरसेगा अँगार,
जमीन उगलेगी आग,
भाई-बद खेल रहे होगे फाग।
जब मरु भू की लू,
रेत से भर मुँह-नाक,
लेने न देगी साँस,
घुटता होगा दम,
कुटुब-कबीला करता होगा अट्टहास,
और जब प्यास बालू को निचोड
हो रही होगी हैरान-परीशान,
दोस्त-अहबाब,
कही बैठे, उटघे, लेते,
माँग रहे होगे
शराब औ' कबाब !
इन्हीसे कहते हो करने को सलाह ?
जिन्होने घर से निकाले नही कदम,
जानी नही मन की उमग,
झेली नही तन की तकलीफ,

पाया नही थकान का रस,
लक्ष्य पर पहुँचने का आनद ।
मै तो इसके लिए भी हूँ तैयार
कि रेगिस्तान के रेगिस्तान करके पार
अपने सपनो से रहूँ उतनी ही दूर,
जितना था तव,
जव किया था उनके लिए प्रस्थान ।
वे आएँगे नही मेरे साथ,
मै कव विका था उनके हाथ ?
मुझे चाहिए नही किसी की सलाह,
मेरे सच्चे सलाहकार है
मेरे पाँव, मेरी राह !

मेरे भाई-वद,
मेरे कुटुव-क़वीले,
मेरे दोस्त-अहवाव,
तुमसे भी दो वात ।—
मुवारक हो तुम्हे अपना घर,
घर का आराम,
घर देखना भी है
नही कम काम ।
मुझे रोकने का मत करो प्रयास,
मुझे अपने पजो, पिडलियो, रानों पर विश्वास ।
मै नही जा रहा हूँ पहली वार,

बहुतेरे आए है
इस पथ को जीत,
बहुतेरे गए है
इस पथ से हार,—
दोनो है महान।
आँधी और तूफान
मिटा नही पाए है
उनके विश्वास भरे, आस भरे
पाँव के निशान,
आन के पडाव,
वे देगे साथ,
वे देगे हाथ।
विदा का है समय,
ओ मेरे ईर्ष्यालु, उदासीन, सहृदय,
अगर दे सको तो दो,
लगता नही है दाम,
अपनी शुभ कामना,
अपना आशीर्वाद,
गो उसके बिना भी
लोगो का चलता है काम।
मिले जो मुझे मेरे ख्वाव,
लौटकर उनको करूँगा तुमसे वयान,
लौटा जो निराश,
करने को उपहास

पाओगे तुम सामान,
या सहानुभूति-भरा व्यंग का शिकार।
लेकिन मुझे
और किसी एक को और,
जान लोगे ठीक,
ज़रा करो गौर,
होगा सबसे बड़ा वरदान,
मेरे सफर में गाया हुआ गान।"

रेगिस्तान का सफर १

दोस्तो के सदमे–१

आई वाज़ ऍंग्री विद माई फरेंड
आई टोल्ड माई राथ, माई राथ डिड एड ।—ब्लेक

काश कि तुम यह जान सकते
कि जिन्हे तुम समझते आए हो अपना दोस्त,
अपना मेहरबान, अपना शुभचितक,
वे अपने दिल की गहराइयो मे
तुमसे करते है कितनी नफरत,
करना चाहते है तुम्हारा कितना नुकसान !

अजीब होता है इसान !
करता है दोस्त की तलाश,
और जब तक दोस्त हो दुखी,
दोस्त पर हो मुसीबत,
इसको आता है मजा,
दिखाने मे हमदर्दी ।
पर जो वह फूले-फले, और हो खुश,
तो इसके सीने पर लोट जाता है साँप,
क्योकि उसे नही रहती इसकी हमदर्दी की जरूरत।

लोग कहते है मुसीबत मे नही मिलता दोस्त ।

मैं कहता हूँ, बात है गलत।
मुसीबत में ही मिलते हैं दोस्त।
और अगर हो मुसीबत के पार,
ख़ुश व ख़ुर्रम व दिलशाद,
तो मेरी बात रखना याद,
तुम्हारे दुश्मन होंगे हज़ार।

जो तुम्हारे दुख में दिखाते हैं संवेदना, सहानुभूति,
उनसे रहना होशियार,
वे हैं मक्कार,
जो तुम्हारी हँसी-ख़ुशी में हैं साथ,
वे हैं दिल के साफ़,
वे तुम्हें करते हैं प्यार,
वे साबित होंगे वफ़ादार।
बात लगती हो नाक़ाबिलेएतबार,
पर तजुरबा भी तो कोई चीज़ है, मेरे यार!
जो बहाते थे मेरे साथ आँसू,
लिए फिरते हैं मेरे लिए कटार,
जो पीते थे मेरे साथ शराब,
वे अब भी हैं मेरे दोस्त, मेरे अहबाब।

आप हैं एक मिसाल!—
नक्काल कहीं के—नक्काल!—
जब मैं हलाहल के घूँट पी रहा था,
यह इतना रोया,

मुझे लगा,
किसीने अमृत से मेरा मुँह धोया ।
अब जो मैंने ली है आराम की एक साँस,
इसके घर मे पड गया है मातम ।
ऐसो के ही लिए कह गए है तुलसीदास—
कि ये दूसरो की हानि मे
समझते है अपना लाभ,
दूसरो के उजडने पर होते है हर्षित,
बसने पर मनाते है विषाद,
कि ये है नाकारे, काहिल, कामचोर,
पर करना हो किसी का अकाज,
तो लेगे सहस्रबाहु से होड,
अपना तन भी देगे छोड,
गल जाएँगे, जैसे पत्थर,
पर खेती कर देगे बर्बाद ।
किसीका बेकाम होता हो घी
तो ये पड जाएँगे बनकर मक्खी ।

क्या है ये,
अगर नही मक्खी के ही समान ?
पर ये है जितने छोटे,
उतने ही खोटे ।
देखने को दूसरो का दोष,
इनके है हज़ार आँखे,

करने को दूसरो की बुराई,
इनके है हजार जबानें,—
शेषनाग के है बडे भाई—
सुनने को दूसरो का पाप,
इनके है दस हजार कान ।
कीचड से लडने के लिए,
जरूरी है कीचड मे प्रवेश,
बुरे को परास्त करने के लिए,
आवश्यक है बुराई का हथियार,
बुराई की भूषा, बुराई का वेश,
भगवान को लेना पडा था सुअर का अवतार ।
ये तो अपने आप मे ही
लिए है मौत का बीज,
ये है क्या चीज़ !
इनसे बचना समझकर बेकार,
तुलसी ने किया था इन्हे दूर से ही नमस्कार ।

छिपता नही नीच,
लाख करे प्रयास,
मुझे भी मिल गया था इसका आभास,
पर मेरा तो था और ही विश्वास,
''मैंने जीवन किया था स्वीकार—
रग, रस और पराग, पंकज और पानी,
भौंरा और दादुर,

काई और कीच और सेवार,--
तब थी मेरी कच्ची जवानी ।
सुदर और असुदर जग मे
दोनो को सराहा था--
हस की सहलाई थी गर्दन,
कौए को भी चाहा था,
उसे भी दिया था अपना अनुराग--
मौके न करूँगा बयान,
ओछी बात,
बडो की सीख,
नेकी कर, कुएँ मे डाल ।
वायस को भी दिया था मैने अनुराग,
परतु निरामिप हुआ है कभी काग ?

यह तो निकला और बडा घाघ,
नोचता है मेरा ही मास !--
देख अपनी चोच की ओर,
मना उसकी खैर,
ओ, नादान,
मेरा हृदय भर ही कोमल,
बाकी जगह मे हूँ वज्र-कठोर,
विद्यापति की प्रेयसी के बिल्कुल विपरीत,
जिसका कुसुम का था सकल शरीर,
हृदय था पाषाण !

दोस्तों के सदमे—२

इट इज इज़ियर टु फारगिव ऐन
एनिमी दैन टु फारगिव ए फ्रेंड—ब्लेक

ओ अभागे,
इस हृदय की वेदना को
खौलने दे,
खौलकर ही शात होने दे।

शत्रु तेरा
आज तुझपर वार करता
तो तुझे ललकारता मैं—
उठ,
नही तू यदि
नपुसक, भीरु, निर्बल,
चल उठा तलवार
औ' स्वीकार कर उसकी चुनौती।
आत्मरक्षा के लिए
लडना कभी अनुचित नही है,
और प्रियजन की सुरक्षा के लिए
कर्तव्य लडना,

दुनिया एक न एक दिन तुम्हे पहचानेगी ।
बहुत दिन पुजता नही वेश का प्रताप,
अत मे परदा उघरता है अपने आप,
झूठ की खुलती है कलई,
साँच को नही आती आँच ।
इसी एक एतकाद पर
मैंने किया है जीवन भर सघर्ष,
सहा है मान-अपमान,
चलाई है लेखनी,
खोला-मूँदा है मुंह,
झेला है अवसाद-अपवाद,
जिस दिन झूठे, चोर, चालबाज,
चापलूस और चुगलखोर
बन जाएँगे कोई ताकत,
कोई प्रभाव,
निश्चित करेगे तुम्हारा-मेरा
उतार-चढाव,
उसी दिन
विधाता के मुंह पर थूक,
दुनिया को लगा के दो लात
कर लूंगा मै आत्मघात ।

दोस्तों के सदमे–२

इट इज़ इज़ियर टु फारगिव ऐन
एनिमी दैन टु फारगिव ए फ़्रेंड—ब्लेक

ओ अभागे,
इस हृदय की वेदना को
खौलने दे,
खौलकर ही शात होने दे।

शत्रु तेरा
आज तुझपर वार करता
तो तुझे ललकारता मैं—
उठ,
नही तू यदि
नपुसक, भीरु, निर्बल,
चल उठा तलवार
औ' स्वीकार कर उसकी चुनौती।
आत्मरक्षा के लिए
लडना कभी अनुचित नही है,
और प्रियजन की सुरक्षा के लिए
कर्तव्य लडना,

किंतु अपने नाम को
लज्जा बचाने के लिए है
धर्म लड़ना।
नाम पर जो
दाग लगता है
कभी धुलता नहीं है।
नाम पर जो
घाव लगता है
कभी पुरता नहीं है।
शत्रु तेरा
आज तेरे नाम पर
यदि वार करता
तो तुझे ललकारता मैं—
चल उठा तलवार
औ' स्वीकार कर उसकी चुनौती।
न्याय,
किस्मत
और मन की शक्ति का
जो फैसला हो
वह खुले मैदान होने दे।

ओ अभागे,
इस हृदय की वेदना को
खौलने दे,

आ रहा भाला लिए कर,
आ रहा काला किए मुँह,
और करने दे उसे आघात।
मेरी बात
यह कर गाँठ,
कायर के प्रहारो से
कभी कोई नही मरता।
जानकर अनजान बनना
भी नही कम वीरता है,
धीरता है।
वीर है वह
घाव जो आगे लिए हो दुश्मनो के
और पीछे, दोस्तो के।

और आएगा कभी वह
सामने भी
मित्रता का एक झीना
आवरण डाले जिसे वह
फाडने को हाथ आगे
कर न पाया।
और, तू बेचैन होगा
चाक करने को उसे,
नापाक उसका रूप नगा देखने को।
किंतु यह मत भूल

उसके तार आधोआध
तेरे हाथ के काते-बुने है।
कौन ताना कट सका बाना कटे बिन ?
एक पर्दा है कि तेरी
वेदनाओ को,
शिकायत को छिपाए,
एक पर्दा है कि उसकी
बेवफाई,
बेहयाई को छिपाए।
रख नियत्रण,
ओ अकिंचन,
हो सके तो,
तू इसे मत फाश होने दे।

ओ अभागे,
इस हृदय की वेदना को
खौलने दे,
खौलकर ही शात होने दे।

तू अचंभे,
क्रोध के
पथ पर लुढकता
वेदनाओ के गढे में
आ गिरा है।
तम घिरा है।

मिल नही पाती
विचारो को दिशाएं ।
मुँह किसे मन की सुनाए ?
ओ विचिंतित,
शोक-सचित,
रो तुझे जो आँख तेरी
आज रोने दे ।

ओ अभागे,–
इस हृदय की वेदना को
खौलने दे,
खौलकर ही शात होने दे ।

सर्वदा से
वे सुरा के घूंट पीकर
गम गलत करते रहे है ।
औ' सुरा के गीत गाकर
मै यही अनुभूति
दुहराता रहा हूँ,
शाति कुछ पाता रहा हूँ ।
आज हालाहल पिए हूँ,
जल रहा तन,
जल रहा मन,
जल रहा एकात जीवन ।
ओ समुदर से घिरे

परदेस की
ठंडी, अँधेरी रात,
सोने दे,
न सोने दे,
प्रात होने दे ।

ओ अभागे,
इस हृदय की वेदना को
खौलने दे,
खौलकर ही शांत होने दे ।

कड़ुआ अनुभव

क्या तुझपर गुजरा है ऐसा वक्त,
जब सारा जहान
लगता है एक मसान,
और मरे, मिटे, जले, बुझे सपनो की
राख का भार
लगता है ऐसा भारी,
जैसे छाती पर रख दिया गया हो पहाड।
सपने लेते है साँस,
सपनो के होता है शरीर,
उन्हे भी लगता है मौत का तीर,
उनसे भारी होती है उनकी लाश,
दिया है उन्हे तूने कभी काँधा ?
और उनकी राख
होती है और भी वजनदार।
वज्र को माननी पडती है
फूल से हार।

जब ऐसा आता है समय,
क्या करते है लोग ?
खोजते है नही डाक्टर, वैद्य, हकीम,

उनके वस का नही यह रोग,
भग, शराव, अफीम, स्लीपिंग पिल
वहला नही पाती दिल ।
इसका एक ही इलाज,
पहले भी लोग करते थे यही,
करते हे आज भी ।
लोग ढूंढते हे एक हमदम,
एक दोस्त,
एक साथी,
एक मीत
और उससे कह डालते है
जो उनपर वीत रही है ।
हल्का हो जाता है मन,
हल्का हो जाता है जीवन,
नुस्खा लगता है आसान,
पर यह है मुश्किल से भी मुश्किल।
ऐसा ही था एक वक्त,
वक्त वहुत वार मुझपर गुजरा है सख्त ।

उसने दिलाया मुझे विश्वास,
मेरा हृदय है पारावार
कि उसमें अगर डाल दिया जाय कैलाश,
तो क्या मजाल,
कि लहरें भी लें साँस ।

पर यह सब है तेरे लिए उपदेश,
आएगा काम,
रख याद।
मै तो कहने को अपनी बात
खोजूंगा फिर भी इसान,
फिर भी आदमजात,
निकले वे भले ही धोखेबाज,
झरोखेबाज, दगादार,
करनेवाले विश्वासघात।
मै हूँ शायर,
शायर नही होता कायर,
वह होता है बलवान,
जीवन के अखाडे का पहलवान।
खुली है मेरी छाती, कमर, जाँघ,
पतलून, कमीज, कोट की
मुझे नही चाहिए ओट,
खुला है मेरा कसरती शरीर,
खुला है मेरा दिमाग,
खुला है मेरे मन का हर द्वार,
मेरी ज़िदगी है आम दरबार।
जहाँ आती है मुझे लाज,
वहाँ शर्मिदा है मानवो का सारा समाज।
और अगर तू है पूर्णता का अवतार,
तो आ मेरे सिर पर विराज,

ले मेरा सौ-सौ नमस्कार,
गो ऐसे दावे होते हैं निराधार।

मेरे हमदम,
मेरे दोस्त,
मेरे साथी,
मेरे मीत,
तुम किसीको उठाने मे असमर्थ,
गिराने मे ही कमाओ नाम।
बैठा नही जाता बेकार,
जाओगे ऊब,
नद्दी में डूब,
दे न दो कही अपनी जान।
अच्छाई नही की जाती,
बुराई ही करो—खूब।
छिछले ऊपर,
खोखले भीतर,
तुम हो मेरी दया के पात्र,
अपने में क्या है जो तुम करो किसीको दान!
बहुत बडा कलेजा चाहिए
किसीका करने को सम्मान,
और किसीकी कमजोरियो का आदर—
यह है फरिश्तो के बूते की बात,
देवताओ का काम!

शैल विहंगिनी

मत डरो,
ओ शैल की
सुदर, मुखर, सुखकर
विहगिनि !
मै पकडने को तुम्हे आता नही हूँ,
जाल फैलाता नही हूँ,
पीजरे मे डाल तुमको
माथ ले जाना नही मै चाहता हूँ,
और करना वद ऐसे पीजरे मे
वद हम जिसमे स्वय है—
ईट-पत्थर का बना वह पीजरा
ज़िसको कि हमने
नाम घर का दे दिया है,
और वाहर की तरोताजा हवाओ,
और वाहर के तरल, निर्मल प्रवाहो,
औ' खुले आकाश के अविरल इशारो,
या कहूँ सक्षेप मे तो,
प्रकृति के वहु राग-रस-रगी प्रभावो से
अलग हमने किया है ।

जानना मैं हूँ
परों पर जो तुम्हारे
खेलती रंगीनियाँ हैं,
वे कहाँ से आ रही हैं—
गगन की किरणावली से,
धरणि की कुसुमावली से,
पवन की अलकावली से—
औ' दरोदीवार के जो पींजरे हैं
बंद उनमें ये किए जाते नहीं हैं।

भूल मुझको एक
आई याद
यौवन के प्रथम पागल दिनों की।
एक तुम-सी थी विहगिन
मैं जिसे फुसला-फँसाकर
ले गया था पींजरे में—
"जानती तू है नहीं
मैं जन्मना कवि ?
रवि जहाँ जाता नहीं है
खेल में जाता वहाँ मैं।
कौन सी ऐसी किरण है,
किस जगह है,
जो कि मेरे एक ही संकेत पर
सब मान-लज्जा

कर निछावर,
मुसकरा कर
मैं जहाँ चाहूँ वहाँ पर
वह बिखर जाती नही है ?
कौन सा ऐसा कुसुम है,
किस जगह है—
भूमि तल पर
या कि नदन वाटिका मे—
जो कि मेरी कल्पनाओ की उँगलियो के
परस पर विहँस
झर जाता नही है ?
कौन सी मधु गध है
चपा, चमेली और बेला की
लटो मे,
या कि रभा-मेनका-सी
अप्सराओ के
लहरधर कुतलो मे,
जो कि मेरी
भावनाओ से लिपटकर
आ नही सकती वहाँ पर
ला
मे साना ?"

बात

र नाचघर

सिर्फ
काले हर्फ़,
काले खत-खचीने !
और तू लाया जिसे है
वह प्रकृति की कोख से जन्मी,
प्रकृति की गोद मे पलती,
प्रकृति के रंग मे ढलती रही है ।'

स्वप्न से शृगार करने के लिए
लाया जिसे था,
अब उसीके वास्ते
एकत्र करता
सौ तरह के मै प्रसाधन !
किंतु उनसे
गध-रस भीनी हुई
रगीनियाँ कब लौटती है ?

स्वप्न की सीमा हुई मालूम,
कवि भी,
गल्तियो से सीखते है ।
स्वप्न अपने वास्ते है,
स्वप्न अपने प्राण-मन को
गुदगुदाने के लिए है,
स्वप्न अपने को भ्रमाने,

भूल जाने के लिए है।
फूल कब वे हैं खिलाते ?
रश्मि कब सोती जगाते ?
और कब वे
गंध का घूंघट उठाते ?
तोडते दीवार कब वे ?
खोलते हैं
पींजरो का द्वार कब वे ?

मै पुरानी भूल
दुहराने नही फिर जा रहा हूँ।
मत डरो,
ओ शैल की
सुंदर, मुखर, सुखकर
विहगिनि !
मै पकडने को तुम्हे आता नही हूँ।
पींजरे के बीच फुसलाता नही हूँ।

जानता हूँ मैं
स्वरो में जो तुम्हारे
रूप लेते राग
वे आते कहाँ से—
बादलो के गर्जनो से,
बात करते तरु-दलो से,

सिर्फ
काले हर्फ,,
काले खत-खचीने !
और तू लाया जिसे है
वह प्रकृति की कोख से जन्मी,
प्रकृति की गोद मे पलती,
प्रकृति के रग मे ढलती रही है ।'

स्वप्न से शृगार करने के लिए
लाया जिसे था,
अब उसीके वास्ते
एकत्र करता
सौ तरह के मै प्रसाधन !
किंतु उनसे
गध-रस भीनी हुई
रगीनियाँ कब लौटती है ?

स्वप्न की सीमा हुई मालूम,
कवि भी,
गलतियो से सीखते है ।
स्वप्न अपने वास्ते है,
स्वप्न अपने प्राण-मन को
गुदगुदाने के लिए है,
स्वप्न अपने को भ्रमाने,

भूल जाने के लिए है।
फूल कब वे हैं खिलाते ?
रश्मि कब सोती जगाते ?
और कब वे
गध का घूंघट उठाते ?
तोडते दीवार कब वे ?
खोलते हैं
पीजरो का द्वार कब वे ?

मैं-पुरानी भूल
दुहराने नही फिर जा रहा हूँ।
मत डरो,
ओ शैल की
सुदर, मुखर, सुखकर
विहगिनि !
मैं पकडने को तुम्हे आता नही हूँ।
पीजरे के बीच फुसलाता नही हूँ।

जानता हूँ मैं
स्वरो में जो तुम्हारे
रूप लेते राग
वे आते कहाँ से—
बादलो के गर्जनो से,
बात करते तरु-दलो से,

साँस लेते निर्झरो से—
औ' दरोदीवार के जो दायरे है
बद उसमे ये किए जाते नही है ।
किन्तु मैने
उस दिवस उन्माद मे
अपनी विहगिन से कहा था—
"क्या कभी तूने हृदय का देश देखा ?
भाव
जब उसमे उमँडते,
घुमँडते, घिरते,
झराझर नयन झरते,
तब जलद महसूस करते
फर्क पानी,
सोम रस का ।
प्यार,
सारे बधनो को तोड,
उर के द्वार सारे खोल,
आपा छोड,
कातर, विवश, अर्पित,
द्रवित अतर्दाह से
है बोलता जब,
उस समय कातारे
अपनी मरमराहट की
निरर्थकता समझकर

शर्म से है सिर झुकाता ।
दो हृदय के
बीच की असमर्थता बन
वासना जब साँस लेती,
और आँधी-सी
उड़ाकर दो तृणों को
साथ ले जाती
विसुधि-विस्मृति-विजन में,
उस समय निर्झर समझना है
कि क्या है ज़िंदगी,
क्या साँस गिनना ।"

और ऐसे भाव,
ऐसे प्यार,
ऐसी वासना का
स्वप्न ज्वालामय दिखाकर
मैं उसे लाया बनाकर बंदिनी
कुछ ईंट औ' कुछ तीलियों की ।
किंतु उसके आगमन के
साथ ही ऐसा लगा,
कुछ हट गया,
कुछ दब गया,
कुछ थम गया,
जैसे कि सहसा

गगन की किरणावली से,
धरणि की कुसुमावली से,
पवन की अलकावली से
रग खीचो।
बादलो के गर्जनो से,
बात करते तरु-दलो से,
साँस लेते निर्भरो से
राग सीखो।
और कवि के
शब्द-जालो,
सब्ज़ बागो से
कभी धोखा न खाओ।
नीड बिजली की लताओ पर बनाओ।
इद्रधनु के गीत गाओ।

पपीहा और चील-कौए

मैं पपीहे की
पिपासा, खोज, आशा
औ' विकट विश्वास पर
पलती प्रतीक्षा
और उसपर व्यंग्य-सा करती
निराशा
और उसकी चील-कौए से चले
जीवन-मरण संघर्ष की लंबी कहानी
कह रहा हूँ,
किंतु उससे क्यों
तुम्हारा दिल धड़कता,
किंतु उससे क्यों
तुम्हें रोमांच होता,
किंतु उससे क्यों
तुम्हें लगता कि कोई
खोलकर पन्ने तुम्हारी डायरी के
पढ़ रहा है ?

मैं बताता हूँ,

पपीहा
है बडा अद्भुत विहगम।
यह कही घूमे,
गगन, गिरि, घाटियो मे,
घन तराई मे, खुले मैदान,
खेतो मे, हरे-सूखे,
समुदर तीर,
नदियो के कछारे,
निर्झरो के तट,
सरोवर के किनारे,
वाग, वजर, बस्तियो पर,
उच्च प्रासादो
कि नीचे छप्परो पर,
यह कही घूमे, उडे,
चारा चुगे,
नारा लगाए
पी-कहाँ का,
पर बनाता
घोसला अपना सदा यह,
भावनाओ के जुटा खर-पात,
केवल मानवो की छातियो मे।

मै धरणि की धूलि से निर्मित,
धरणि की धूलि मे लिपटा,

तोड दी गर्दन,
वहुत वह फडफडाया,
वच न पाया।
किंतु, मरते वक्त
इतना कह गया
किसने मुझे मारा,
मरा भी मै कहाँ,
मै तो तुम्हारे
प्राण की ही हूँ प्रतिध्वनि,
वह जहाँ मुखरित हुआ,
मै फिर जिया।

शून्य कोई भी जगह
रहने नही पाती
वहुत दिन इस जगत मे।
जिस जगह पर
था पपीहे का वसेरा,
अव वहाँ पर
चील-कौए ने
लिया है डाल डेरा।
सकुचित उनकी निगाहे
सिर्फ नीचे को
लगी रहती निरतर।
नही वे

माँगते था जीने
ऐसा कि जो
उनके परों से
नप न पाए,
तुल न पाए,
टूट न जाए।
और, मँडराते
बना छोटी परिधि ऐसी
कि उसके बीच
सीमित, सकुचित, सपुटित
मेरा प्राण
घुटता जा रहा है।
और, मुझको
देखते थे इस तरह,
जैसे कि मैं
आहार उनका छोड़कर
कुछ भी नहीं हूँ।
और मुझमें
अब नहीं ताकत
कि उनकी गर्दनों को तोड़ दूँ मैं,
या कि उनके पर मरोड़ूँ।
पर लिए अरमान हूँ मैं
फिर पपीहा लौट आए,
फिर असभव प्यास

तोड दी गर्दन,
बहुत वह फडफडाया,
बच न पाया।
किंतु, मरते वक्त
इतना कह गया
किसने मुझे मारा,
मरा भी मैं कहाँ,
मैं तो तुम्हारे
प्राण की ही हूँ प्रतिध्वनि,
वह जहाँ मुखरित हुआ,
मैं फिर जिया।

शून्य कोई भी जगह
रहने नही पाती
बहुत दिन इस जगत मे।
जिस जगह पर
था पपीहे का बसेरा,
अब वहाँ पर
चील-कौए ने
लिया है डाल डेरा।
संकुचित उनकी निगाहे
सिर्फ नीचे को
लगी रहती निरंतर।
कुछ नही वे

विभाजित इस तरह करना
कि दोनो अग
रहकर सग भी
बिलकुल अलग,
विपरीत बिलकुल,
शत्रु आपस में
बने हो।

तुम अगर इसान हो तो
इस विभाजन,
इस लडाई
से अपरिचित हो नही तुम।
धृष्टता हो माफ,
मैंने जो तुम्हारी,
या कि अपनी डायरी से
पक्तियाँ कुछ आज
उद्धृत की यहाँ पर।

प्राणो मे जगाए,
फिर अखड-अनत नभ के बीच
ले जाकर भ्रमाए,
फिर प्रतीक्षा,
फिर अमर विश्वास के
वह गीत गाए,
पी-कहाँ की रट लगाए,
काल से सग्राम,
जग के हास,
जीवन की निराशा
के लिए तैयार
फिर होना सिखाए।

पालना उर मे
पपीहे का कठिन है,
चील-कौए का, कठिनतर,
पर कठिनतम
रक्त, मज्जा,
मास अपना
चील-कौए को खिलाना,
साथ पानी
स्वप्न स्वाती का
पपीहे को पिलाना।
और, अपने को

विभाजित इस तरह करना
कि दोनो अंग
रहकर संग भी
बिलकुल अलग,
विपरीत बिलकुल,
शत्रु आपस में
बने हो।

तुम अगर इसान हो तो
इस विभाजन,
इस लडाई
से अपरिचित हो नही तुम।
धृष्टता हो माफ,
मैंने जो तुम्हारी,
या कि अपनी डायरी से
पक्तियाँ कुछ आज
उद्धृत की यहाँ पर।

प्राणो में जगाए,
फिर अखड-अनत नभ के बीच
ले जाकर भ्रमाए,
फिर प्रतीक्षा,
फिर अमर विश्वास के
वह गीत गाए,
पी-कहाँ की रट लगाए,
काल से सग्राम,
जग के हास,
जीवन की निराशा
के लिए तैयार
फिर होना सिखाए।

पालना उर मे
पपीहे का कठिन है,
चील-कौए का, कठिनतर,
पर कठिनतम
रक्त, मज्जा,
मास अपना
चील-कौए को खिलाना,
साथ पानी
स्वप्न स्वाती का
पपीहे को पिलाना।
और, अपने को

. रंगीन कलियों
और फूलों में खिलोगे,
औ' न उसकी वेदना के अश्रु बनकर
प्रात पलकों में पँखुरियों के पलोगे ।
जड़ सुयश,
निर्जीव कीर्ति कलाप
औ' मुर्दा विशेषण का
तुम्हे अभिमान,
तो आदर्श तुम मेरे नही हो ।

पकमय,
सकलंक मैं,
मिट्टी लिए मैं अंक में—
मिट्टी,
कि जो गाती,
कि जो रोती,
कि जो है जागती-सोती,
कि जो है पाप में धँसती,
कि जो है पाप को धोती,
कि जो पल-पल बदलती है,
कि जिसमें ज़िंदगी की गत मचलती है ।

तुम्हे लेकिन गुमान—
ली समय ने
सांस पहली

चोटी की बरफ

स्फटिक-निर्मल
और दर्पण-स्वच्छ,
हे हिम-खड, शीतल औ' समुज्ज्वल,
तुम चमकते इस तरह हो,
चाँदनी जैसे जमी है
या गला चाँदी
तुम्हारे रूप में ढाली गई है।

स्फटिक-निर्मल
और दर्पण-स्वच्छ,
हे हिम-खड, शीतल औ' समुज्ज्वल,
जब तलक गल-पिघल,
नीचे को ढलककर
तुम न मिट्टी से मिलोगे,
तब तलक तुम
तृण हरित बन,
व्यक्त धरती का नही रोमाच
हरगिज कर मकोगे,
औ' न उसके हास बन

, रंगीन कलियों
और फूलों में खिलोगे,
औ' न उसकी वेदना के अश्रु बनकर
प्रात पलकों में पँखुरियों के पलोगे।

जड़ सुयश,
निर्जीव कीर्ति कलाप
औ' मुर्दा विशेषण का
तुम्हें अभिमान,
तो आदर्श तुम मेरे नहीं हो।

पंकमय,
सकलंक मैं,
मिट्टी लिए मैं अंक में—
मिट्टी,
कि जो गाती,
कि जो रोती,
कि जो है जागती-सोती,
कि जो है पाप में धँसती,
कि जो है पाप को धोती,
कि जो पल-पल बदलती है,
कि जिसमें ज़िंदगी की गत मचलती है।

तुम्हें लेकिन गुमान—
ली समय ने
साँस पहली

चोटी की बरफ

स्फटिक-निर्मल
और दर्पण-स्वच्छ,
हे हिम-खड, शीतल औ' समुज्ज्वल,
तुम चमकते इस तरह हो,
चाँदनी जैसे जमी है
या गला चाँदी
तुम्हारे रूप मे ढाली गई है ।

स्फटिक-निर्मल
और दर्पण-स्वच्छ,
हे हिम-खड, शीतल औ' समुज्ज्वल,
जब तलक गल-पिघल,
नीचे को ढलककर
तुम न मिट्टी से मिलोगे,
तब तलक तुम
तृण हरित बन,
व्यक्त धरती का नही रोमाच
हरगिज कर सकोगे,
औ' न उसके हास बन

, रंगीन कलियों
और फूलों में मिलोगे,
औ' न उसकी वेदना के अश्रु बनकर
प्रात पलकों में पँखुरियों के पलोगे।
जड़ सुयश,
निर्जीव कीर्ति कलाप
औ' मुर्दा विशेषण का
तुम्हें अभिमान,
तो आदर्श तुम मेरे नहीं हो।

पंकमय,
सकलंक मैं,
मिट्टी लिए मैं अंक में—
मिट्टी,
कि जो गाती,
कि जो रोती,
कि जो है जागती-सोती,
कि जो है पाप में धँसती,
कि जो है पाप को धोती,
कि जो पल-पल बदलती है,
कि जिसमें ज़िंदगी की गत मचलती है।

तुम्हें लेकिन गुमान—
ली समय ने
साँस पहली

जिस दिवस से
तुम चमकते आ रहे हो
स्फटिक-दर्पण के समान ।
मूढ, तुमने कब दिया है इम्तहान ?
जो विधाता ने दिया था फेक
गुण वह एक
हाथो दाब,
छाती से सटाए
तुम सदा से हो चले आए,
तुम्हारा बस यही आख्यान !
उसका क्या किया उपयोग तुमने ?
भोग तुमने ?
प्रश्न पूछा जायगा, सोचा जवाब ?
उतर आओ
और मिट्टी मे सनो,
जिंदा बनो,
यह कोढ छोडो,
रग लाओ,
खिलखिलाओ,
महमहाओ ।
तोडते है प्रेयसी-प्रियतम तुम्हे ?
सौभाग्य समझो,
हाथ आओ,
साथ जाओ ।

सामने तेरे पडा
युग का जुआ ।
इसको तमककर तक,
हुमककर ले उठा,
युग के युवा !

लेकिन ठहर,
यह बहुत लबा,
बहुत मेहनत औ' मशक्कत
माँगनेवाला सफर है ।
तै तुझे करना अगर है
तो तुझे
होगा लगाना
जोर एडी और चोटी का बराबर,
औ' बढाना
कदम, दम से साध सीना,
और करना एक
लोहू से पसीना ।
मौन भी रहना पडेगा,
बोलने से
प्राण का बल
क्षीण होता,
शब्द केवल झाग बन
घुटता रहेगा, बद मुख में ।

फूलती साँसें
कहाँ पहचानती हैं
फूल-कलियों की सुरभि को
लक्ष्य के ऊपर
जड़ी आँखें
भला कब देख पातीं
साज धरती का,
नशीलापन गगन का।

वत्स,
आ तेरे गले में
एक घंटी बाँध दूं मैं,
जो परिश्रम
के मधुरतम
कंठ का संगीत बनकर
प्राण-मन पुलकित करे
तेरा निरंतर,
और जिसकी
क्लांत औ' एकांत ध्वनि
तेरे कठिन संघर्ष की
बनकर कहानी
गूंजती जाए
पहाड़ी छातियों में।
अलविदा,

युग के युवा,
अपने गले मे डाल तू
युग का जुआ,
इसको समझ जयमाल तू,
कवि की दुआ !

छिपा दिया था कुछ ऐसा
जिसके रहते
हम कभी नही मिल सकते थे
वेहिचक-भिझक ।
तुम आईं तो
हम इस प्रकार वैठे - वोले,
जैसे हम पिछली वार लडे थे सपने मे,
जो अपने पर लज्जित होकर
है जाकर छिपा अँधेरे में,
जो धुँधला होकर
लुप्त हो गया है
अतीत के अतर में,
जो वीत गई सो वात गई ।

सहसा यह मुझको लगा
कि कोई झाँक रहा है खिडकी से ।
जव दो प्रेमी
जा कही वैठते है
अपने अस्फुट शब्दो से
अपने शत-शत भावो को
मुखरित करने की कोशिश मे,
सो निर्जन हो,
कोई आ वहाँ टपकता है,
रस मे विप-सा ।

जिस जगह यज्ञ होता,
राक्षस आ ही जाते।

मुडकर देखा
कचन का चदा
खडा हुआ था खिडकी में,
तस्वीर की तरह जडा
चौखटे के भीतर।
विस्मय का क्षण !
कमरे की दीवारो ने
जैसे वाहे फैला घेरा था
आकाशी कोना चंदा का !

मैंने तुमको
सहमा वांहो में वांध लिया,
अधरो पर चुवन करते ही,
घटना देखो, विजली आई।
दो क्षीर सीकरो पर जैसे
कांजी का सागर उमड पड़ा।
हम हुए अलग,
आँखो में पिछला झगडा
फिर हो गया सजग,
वीती थी वीत नही पाई।
"गल्ती की फिर से तुम्हे मिली।"
"गल्ती की फिर से तुम्हे मिला।"

हम हुए अलग ।
तब नहीं,
राक्षस अब आया था,
आना ही था ।

कमरे की सिमटी दीवारें,
चंदा अंबर में चला गया,
तुम चली गईं—

बिजली को करके बंद
रहा कुछ देर खड़ा
मैं कमरे में ।
अब चाँद नहीं,
चाँदनी आ रही थी अंदर,
वह व्यंग कर रही थी
अब उस अँधियारे पर
जिसमें तुमने,
जिसमें मैंने
सब कटु-अप्रिय,
सारा विषमय बिसराया था !

मैंने देखा था,
तुमने भी तो देखा था
जब चाँद हमारे घर के अंदर आया था,
जब चाँद हमारे घर से बाहर चला गया ।

नीम के दो पेड़

"तुम न समझोगे,
शहर से आ रहे हो,
हम गँवारों की गँवारी बात।
शहर,
जिसमें हैं मदरसे और कालिज
ज्ञान-मद से झूमते उस्ताद जिनमें
नित नई से नई,
मोटी पुस्तकें पढ़ते, पढ़ाते,
और लड़के घोखते, रटते उन्हें नित,
ज्ञान ऐसा रत्न ही है,
जो बिना मेहनत, मशक्कत
मिल नहीं सकता किसीको।
फिर वहाँ विज्ञान-बिजली का उजाला
जो कि हरता बुद्धि पर छाया अँधेरा,
रात को भी दिन बनाता।
इस तरह का ज्ञान औ' विज्ञान
पच्छिम की सुनहरी सभ्यता का
कीमती वरदान है
जो आ तुम्हारे बड़े शहरों में

इकट्ठा हो गया है।
और तुम कहते कि यह दुर्भाग्य है जो
गाँव मे पहुँचा नही है,
और हम अपने गँवरपन मे समझते,
खैरियत है, गाँव इनसे बच गए है।

सहज में जो ज्ञान मिल जाए
हमारा धन वही है,
सहज मे विश्वास जिसपर टिक रहे
पूँजी हमारी,
बुद्धि की आँखे हमारी बद रहती,
पर हृदय का नेत्र जब-तब खोलते हम,—
और इनके बल युगो से
हम चले आए, युगो तक
हम चले जाते रहेगे।
और यह भी है सहज विश्वास,
सहजज्ञान,
सहजनुभूति,
कारण पूछना मन।

इस तरह से है यहाँ विख्यात
मैने यह लडकपन मे सुना था,
और मेरे बाप को भी यह लडकपन में
बताया गया था,

वावा लडकपन में वडो से सुन चुके थे,
और अपने पुत्र को मैंने वताया है
कि तुलसीदास आए थे यहाँपर,
तीर्थ-यात्रा के लिए निकले हुए थे,
पाँव नगे,
वृद्ध थे वे किंतु पैदल जा रहे थे,
हो गई थी रात,
ठहरे थे कुँए पर,
एक साधू की यहाँ पर झोपडी थी,
फलाहारी थे, धरा पर लेटते थे,
और वस्ती में कभी जाते नही थे,
रात से ज्यादा कही रुकते नही थे,
उस समय वे राम का वनवास
लिखने में लगे थे।

रात वीते
उठे ब्राह्म मुहूर्त में,
नित्यक्रिया की,
चीर दाँतन जीभ छीली,
और उसके टूक दो खोसे धरणि में,
और कुछ दिन वाद उनसे
नीम के दो पेड निकले,
साथ-साथ वडे हुए,
नभ में उठे औ'

उस समय से
आज के दिन तक खडे है ।"

मै लडकपन में
पिता के साथ
उस थल पर गया था ।
यह कथन सुनकर पिता ने
उस जगह को सिर नवाया
और कुछ सदेह से, कुछ व्यग से
मै मुसकराया ।

बालपन मे
था अचेत, विमूढ इतना
गूढता मै उस कथा की
कुछ न समझा ।
किंतु अब जब
अध्ययन, अनुभव तथा सस्कार से मै
हूँ नही अनभिज्ञ
तुलसी की कला से,
शक्ति से, सजीवनी से,
उस कथा को
याद करके सोचता हूँ
हाथ जिसका छू
कलम ने वह बहाई धार

जिसने शात कर दी
कोटिको के दग्ध कठो की पिपासा,
सीच दी खेती युगो की मुर्झुराई,
औ' जिला दी एक मुर्दा जाति पूरी,
जीभ उसकी छू
अगर दो दांतनो से
नीम के दो पेड निकले
तो बडा अचरज हुआ क्या।
और यह विश्वास
भारत के सहज भोले जनो का
भव्य तुलसी के कलम की
दिव्य महिमा
व्यक्त करने का
कवित्व-भरा तरीका।

मैं कभी दो पुत्र अपने
साथ ले उस पुण्य थल को
देखना फिर चाहता हूँ।
क्योकि प्रायश्चित न मेरा
पूर्ण होगा
उस जगह वे सिर नवाए।
और सभव है कि मेरे पुत्र दोनो
व्यग से, सदेह से कुछ मुसकराएँ।

दो तरह के लोग

हाँ, थके हो,
जिस तरह बैठे,
उसीसे यह लगा मुझको कि तुम
बेहद थके हो ।

कमर, घुटनो पर
लगे कब्जे
अचानक पड गए ढीले,
गिरे तुम दो जगह से टूट
भद से भूमि पर,
बेहद थके हो ।

धूलि-धूसर तन-वसन है,
पाँव क्षत-विक्षत,
बेवाई बेवफाई से
कटी है एडियो पर
और तलुओ पर पडे छाले
बताते है कसाले
वन, मरुस्थल, पर्वतो की

कठिन, लंबी यात्रा के।

फूलता है दम,
नही साँसे समाती,
तुम न बोलो,
पर समझ सब कुछ गया मैं।

धँसी पलको,
झुकी भौंहो,
धूलि-श्वेत बरौनियो में
छिपी आँखो की
निराशा से
मुझे यह लग रहा है,
तुम चले थे
भूमि पर
आकाशगंगा, कल्पतरु को
खोजने को!
यो न चौंको,
ज्योतिषी मुझको न समझो,
अनुभवी हूँ।

इस जगत के
रास्ते पर
जिस तरह तुम, उस तरह के

यात्रियो से
वास्ता मेरा बहुत पडता रहा है।
चाल से पहचानता हूँ बात मन की
और चेहरा देखकर इतिहास
जीवन का बताता,
चाहिए आँखे,
छिपा कुछ भी नही है।

मैं तुम्हारी खोज को
कहता बुरा कब ?
देखना सपना
उसे फिर सत्य करने के लिए
तैयार होना, यत्न करना,
स्वेद से सनना,
नहाना अश्रु से भी,
रक्त से भी—
मूल्य है सब का,
महत्ता है सभी की,
कुछ न आए हाथ तो भी।
मैं बताना
सिर्फ इतना चाहता हूँ,
इस तरह के लोग भी है,
सत्य पर जो
स्वप्न का आरोप करते

औ' उसे डिगने न देते ।
यदि तुम्हारी आन
आदर-योग्य है तो
आस्था उनकी नही कम आदरास्पद ।
कोस भर पर
एक वहती नदी,
कुछ उसमें नही अद्‌भुत, अलौकिक
तीर, धारा, धार में वहते
मछलियाँ–फेन–तिनके,
फिर किनारा ।
किंतु पूछो पास के देहात में जा
सव कहेंगे
राम वन जाते समय
हिलकर गए थे इस नदी में ।
थी वडी गहरी,
गए वे जिस जगह से
उभर नीचे से हुई छिछली
कि उनको पार जाने में
न कोई कष्ट पहुँचे ।
सव जगह गहरी,
जहाँ से वे गए थे
आज भी छिछली वनी है,
पुण्य है उसमें नहाना ।
उस जगह पर घाट है

औ' घाट पर पीपल खडा है
लोग ऐसा मानते है,
देवता है पात-पात निवास करते,
एक को भी तोडने से पाप लगता,
बैठता उसके तले जो शाति पाता।
यह नदी उनके लिए आकाशगगा
और पीपल कल्पतरु है।

बाढ आई,
आँधियाँ आईं
हज़ारो बार
क्या डूबा, वहा, उजडा न उनमें ?
किंतु वह विश्वास
ज्यो का त्यो बना है,
क्योकि लाखो बार परखा जा चुका है,
खरा उतरा है।
चलो, आओ,
इस नदी मे हिल नहाओ,
पेड की छाया तले होकर खडे
उनकी सनातन
आस्था को सिर नवाओ।
यदि तुम्हारे स्वप्न फिर तुमको पुकारे,
तो न ठहरो,
तो उन्ही की ओर जाओ।

दिल्ली के बादल

बस दिल्ली पर ही बरस न,
ओ घन कजरारे,
ओ मतवारे,
ओ मतमारे !
बस दिल्ली को ही सरस न कर,
नम, तर मत कर,
मत दिल्ली को ही हरा बना,
कलियो, कुसुमो से भरा बना,
ओ घन काले,
ओ मदढाले,
ओ मतवाले !

दिल्ली से
पूरब, पच्छिम, उत्तर, दक्खिन भी
इस बडे देश के खेत खडे,
इस बडे खेत की क्यारी है,
जिनको मेहनत ने गोडा है,
मिट्टी का ढोका फोडा है,
जिनमें श्रम-सीकर बीजो को
छितराया है,

जिनपर फैले आकाश पटल को
आशाओ से नापा है,
जिनपर करुणा की दृष्टि-वृष्टि
करने को देवो-देवो का
मुँह ताका है ।
तू उनको आज निराश न कर,
तू उनको हतविश्वास न कर ।
बस दिल्ली पर ही उमँड-घुमँड
मत झड जा,
ओ घन कजरारे,
ओ मतवारे,
ओ मतमारे !
बस दिल्ली को ही ध्वनित न कर,
बस दिल्ली का ही शून्य न हर,
दिल्ली मे ही रस-राग न भर,
ओ घन काले,
ओ मदढाले,
ओ मतवाले !

दिल्ली से
पूरब, पच्छिम, उत्तर, दक्खिन भी
हे नगर-ग्राम,
घर और झोपडे खडे हुए,
जिनके हर कोने में सूनापन छाया है,

जिनके दर-दीवारों ने
आन-अँगारों का
अनगिनती झोंका खाया है,
वे भी तो तुझको तकते हैं,
उनपर बरसे रंग,
राग झड़े,
कानों, प्राणों में ठंड पड़े।

तू उनको आज निराश न कर,
तू उनको आज उदास न कर।

यह है जरूर, मगरूर,
यहाँ जो तू बरसा,
उसकी होगी देसी-परदेसी
छापों के ऊपर चर्चा,
पर तुझको विज्ञापन से क्या?
कब तुझको देशी-अंतरदेशी क्षेत्रों में
प्रभुता की साख जमानी है?
तू भूल न, तू
मिट्टी के खेतों का सिंचक,
तू सिर्फ अकिंचन पानी है।
मत व्यर्थ बरस तू
कागज पर, अखबारों पर,
जा न्योछावर हो
सूखे खेत कछारों पर।

तू उनको आज हताश न कर,
तू उनको हतविश्वास न कर।
बस दिल्ली पर ही गरज न,
ओ घन कजरारे,
ओ मतवारे,
ओ मतमारे!
रुख़ दिल्ली की ही ओर न कर,
बस दिल्ली मे ही शोर न कर,
दिल्ली को ही रसबोर न कर,
ओ जलदानी,
ओ अभिमानी,
ओ अज्ञानी!

इस दिल्ली के
ईंटे-चूने के महलो पर, या
ककड, पत्थर, अलकतरे की सडको पर
जो पानी तू बरसाता है,
तू नही देखता है, अधे,
गदी नाली, नाले, परनालो में बहता,
वह काले, बदबूदार गटर मे जाता है।
जो जल तू सूखी मिट्टी पर बरसाता है,
उसको भू का प्यासा कण-कण
करुणार्द्र स्वर्ग का अमृत सरिस
वरदान समझकर

बूँद-बूँद पी जाता है,
पीकर जैसे जी जाता है,
मन भरकर भीग नहाता है,
तू देख नही हर बार चुका
इसका एहसान चुकाता है,
पन्नो की पौद लगाता है,
मोती की फसल उठाता है,
औ' नही अन्न से बढकर कुछ
कोई धरती के ऊपर,
अबर के नीचे उपजाता है !

हाँ, मुगल गार्डन
औ' उसके छोटे-मोटे
सस्करणो मे
अग्रेजी कलि-कुसुमो की जो रगीनी है,
जो खुशबू भीनी-भीनी है,
उसपर तू अपने
कितने अश्रु गिराएगा।
उनको गिनती के
लोग देखकर खुश हो लें,
पर दूर-दूर से उनको केवल
सूँघ-सूँघकर
देश नही जी पाएगा।

तेरे नीचे,

तेरे ऊपर
जो है निर्भर
उनके अदर अनुपात समझ,
उनके अतर की बात समझ,
उनसे जब देना-लेना हो,
आवश्यकता, औकात समझ।
बस दिल्ली पर ही बरस न,
ओ घन कजरारे,
ओ मतवारे,
ओ मतमारे।
बस दिल्ली पर ही तू न फिसल,
बस दिल्ली पर ही तू न पिघल,
बस दिल्ली पर ही तू मत ढल,
ओ जलदानी,
ओ सैलानी
अल्पज्ञानी!

दिल्ली से
पूरब, पच्छिम, उत्तर, दक्खिन भी
इस बडे देश के खेत पडे है,
नगर-ग्राम, घर और झोपडे आदि
खडे है,
उन खेतो की हर क्यारी
तेरी धारो की अधिकारी,

सब नगर-ग्राम के कोनों को
घर-झोपड़ियों के सब दर,
सब दीवारों को
तेरे रस-रागों पर हक़ है।
तुझमें जब तक
जल है, जोबन का पावक है,
बस दिल्ली पर ही तू न चमक,
बस दिल्ली पर ही तू न लमक,
बस दिल्ली पर ही तू न झमक,
सब ओर फैल, सब ओर बिखर,
घन कजरारे,
घन मतवारे,
घन मतमारे!
तुलसी का एक दोहरा सुन,
'मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान को एक,
पालै पोषै सकल अँग, 'तुलसी' सहित विवेक।'
गुन, इसको गुन!

नागिन और देवकन्या

एक बड़ी विषही
नागिन है शापमयी
धरती की बिल मे
मानव के दिल मे,
जिससे यह हाल हुआ—

सुरसरि की धारा को
खोजने न जाओ तुम ।
उर की गगोत्री से
वेदना निकलती जो,
उसकी पावनता पर
सुरधुनी सिर धुनती ।

नेत्र-जल मेरा लो,
उसको अभिपिक्त करो
अपने उच्छ्वास से,
अपने मुख-मत्र से,
अपनी निष्ठा से, और
अपने विश्वास से ।
फिर इसको तुम छिड़को

बनकर के हिलती है, खिलती है,
दूब कही बनकर के बिछती है,
शस्य कही बनकर के झूमती,
गध कही बनकर के घूमती,'
हर्ष कही बनकर के बिखरती,
रूप कही बनकर के निखरती,
प्रीति कही बनकर के सिहरती,
गीत कही बनकर के गूंजती,
प्राण कही बेधती,
कान कही चूमती।

वेदना जब जगती है,
अदर को धँसती है,
बधन मे फँसती है,
खोल नही पाती है,
डोल नही पाती है,
बोल नही पाती है,
घुट-घुटकर भीतर ही भीतर
वह विष बन जाती है,
नागिन बन खाती है
जीवन के मूल बीज।
वध्या होती जमीन,
मुर्दा होता मनुष्य।
मुर्दे भी चलते-फिरते,

तीन विषयों पर एक रचना

प्रश्न

क्या जीवन है?
क्या कविता है?
या उँगली की खुजलाहट है?

उत्तर

मैं कहता हूँ,
तुम सुनती हो।
तुम कहती हो,
मैं सुनता हूँ।
यह जीवन है।

अंबर कहता,
धरती सुनती।
धरती कहती,
अंबर सुनता।
यह कविता है।

नागिन यह वेष बदल
सुदर, सुकुमार देव-कन्या वन जाएगी,
गीत नया गाएगी,
प्रीति नई पाएगी,
काल, जग, जीवन की
जीत नई लाएगी।

तीन विषयों पर एक रचना

प्रश्न

क्या जीवन है ?
क्या कविता है ?
या उँगली की खुजलाहट है ?

उत्तर

मैं कहता हूँ,
तुम सुनती हो।
तुम कहती हो,
मैं सुनता हूँ।
यह जीवन है।

अवर कहता,
धरती सुनती।
धरती कहती,
अवर सुनता।
यह कविता है।

कहती स्याही,
सुनता कागज।
कहता कागज़,
सुनती स्याही।
यह उँगली की खुजलाहट है।

जीवन के पहिए के नीचे,
जीवन के पहिए के ऊपर

मैं बहुत गाता हूँ,
बहुत लिखता हूँ
कि मेरे अंदर
जो मौन है,
बंद है, बंदी है,
जो सबके लिए
और मेरे लिए भी
अज्ञात है, रहस्यपूर्ण है,
वह मुखरित हो, खुले,
स्वच्छंद हो, छंद हो,
गाए और बताए
कि वह क्या है, कौन है
जो मेरे अंदर मौन है।

मेरे दिल पर, दिमाग पर,
साँस पर
एक भार है—
एक पहाड़ है।

मै लिखता हूँ तो समझो,
मै अपने कलम की निब से,
नोक से
उसे छेदता हूँ, भेदता हूँ,
कुरेदता हूँ,
उसपर प्रहार करता हूँ
कि वह भार घटे,
कि वह पहाड हटे,
कि पाप कटे
कि मै आजादी से साँस लूं,
आजादी से विचार करूँ,
आजादी से प्यार करूँ।

उधर
पत्थर है, चट्टान है, पहाड है,
इधर
उँगली है, लेखनी है, निब है,
लेकिन इनके पीछे—
क्या तुम्हे इसका नही ध्यान है ?
हाथ है,
इसान है,
कवि है।

विहटा-दुर्घटना

उसने आँखों से देखी थी।
मैंने पूछा,
कौन
सबसे अधिक मार्मिक
दृश्य तुमने देखा था ?
याद कर वह काँप उठा,
आँखें फाड,
साँस खीच,
बोला वह,
एक आदमी का पेट
रेल के पहिए से दबा था,
पर वह चक्के को
सडसी-जैसे पजो से
कसकर, पकडकर, जकड़कर
दाँत से काट रहा था,
सारी ताकत समेट !
दाँत जैसे सख्त हुए
लोहे के चने चबा।
क्षण भर में हो हताश
गिरा दम तोडकर,
लेकिन उस लोहे के पहिए पर
कुछ लकीर, कुछ निशान
छोडकर !

और जो मै वहुत गा चुका हूँ,
कभी अपने अदर भी पैठता हूँ
कि देखूं मेरे अदर जो
मौन है, वद है,
वह कुछ मुखरित हुआ, खुला,
तो एक आजन्म वदी
जो अगणित जजीरो से वद्ध है,
केवल कुछ को हिलाता है,
धीमे-धीमे झनकाता है,
व्यग्य से मुसकाता है,
मानो यह बताता है
कि इतना ही मै स्वच्छद हूँ,
कि इतना ही तुम्हारा छद है।

और जो मै वहुत लिख चुका हूँ,
न आजादी से प्यार कर सकता हूँ,
न विचार कर सकता हूँ,
न साँस ले सकता हूँ,
न मेरा पाप कटा है,
न मुझपर से पहाड हटा है,
न भार घटा है,
और जो मैने अपने कलम की नोक से
छेदा है, भेदा है,
कुरेदा है,

जब वह मुझसे छूट जाय,
मेरा दम टूट जाय,
पहिए पर देखना,
होगा मेरा निशान,
मेरे वज्रदतो से
लिखा स्वाभिमान-गान !

बुद्ध और नाचघर

"बुद्ध सरण गच्छामि,
धम्मं सरणं गच्छामि,
संघ सरणं गच्छामि ।"

बुद्ध भगवान,
जहाँ था धन, वैभव, ऐश्वर्य का भंडार,
जहाँ था पल-पल पर सुख,
जहाँ था पग-पग पर शृंगार,
जहाँ रूप, रस, यौवन की थी सदा बहार,
वहाँ पर लेकर जन्म,
वहाँ पर पल, बढ, पाकर विकास,
कहाँ से तुममें जाग उठा
अपने चारो ओर के संसार पर
संदेह, अविश्वास ?
और अचानक एक दिन
तुमने उठा ही तो लिया
उस कनक-घट का ढक्कन,
पाया उसे विष-रस भरा ।
दूल्हन की जिसे पहनाई गई थी पोशाक,

वह तो थी सडी-गली लाश ।
तुम रहे अवाक्,
हुए हैरान,
क्यो अपने को धोखे मे रक्खे है इसान,
क्यो वह पी रहा है विष के घूंट,
जो निकलता है फूट-फूट ?
क्या यही है सुख-साज
कि मनुष्य खुजला रहा है अपनी खाज ?

निकल गए तुम दूर देश,
वनो-पर्वतो की ओर,
खोजने उस रोग का कारण,
उस रोग का निदान ।
बडे-बडे पडितो को तुमने लिया थाह,
मोटे-मोटे ग्रथो को लिया अवगाह,
सुखाया जगलो मे तन,
साधा साधना से मन,
सफल हुआ श्रम,
सफल हुआ तप,
आया प्रकाश का क्षण,
पाया तुमने ज्ञान शुद्ध,
हो गए प्रबुद्ध ।

देने लगे जगह-जगह उपदेश,

जगह-जगह व्याख्यान,
देखकर तुम्हारा दिव्य वेश,
घेरने लगे तुम्हे लोग,
सुनने को नई बात
हमेशा रहता है तैयार इन्सान,
कहनेवाला भले ही हो शैतान,
तुम तो थे भगवान।

जीवन है एक चुभा हुआ तीर,
छटपटाता मन, तडफडाता शरीर।
सच्चाई है—सिद्ध करने की जरूरत है ?—
पीर, पीर, पीर।
तीर को दो पहले निकाल,
किसने किया शर का सधान ?—
क्यो किया शर का सधान ?
किस किस्म का है वाण ?
ये है वाद के सवाल।
तीर को दो पहले निकाल।

जगत है चलायमान,
वहती नदी के समान,
पार कर जाओ इसे तैरकर,
इसपर वना नही सकते घर।
जो कुछ है हमारे भीतर-वाहर,

दीखता-सा दुखकर-सुखकर,
वह है हमारे कर्मों का फल।
कर्म है अटल।
चलो मेरे मार्ग पर अगर,
उससे अलग रहना भी नही कठिन,
उसे वश मे करना है सरल।

अत मे, सबका है यह सार—
जीवन दुख ही दुख का है विस्तार,
दुख का इच्छा है आधार,
अगर इच्छा को लो जीत,
पा सकते हो दुखो से निस्तार,
पा सकते हो निर्वाण पुनीत।

ध्वनित-प्रतिध्वनित
तुम्हारी वाणी से हुई आधी जमीन—
भारत, ब्रह्मा, लका, स्याम,
तिब्बत, मगोलिया, जापान, चीन—
उठ पडे मठ, पैगोडा, विहार,
जिनमे भिक्षुणी, भिक्षुओ की कतार
मुँडाकर सिर, पीला चीवर धार
करने लगी प्रवेश
करती इस मत्र का उच्चार
"बुद्ध सरण गच्छामि,

धम्म सरण गच्छामि,

सघ सरण गच्छामि।"

कुछ दिन चलता है तेज

हर नया प्रवाह,

मनुष्य उठा चौंक, हो गया आगाह।

वाह री मानवता,

तू भी करती है कमाल,

आया करें पीर, पैगंबर, आचार्य,

महंत, महात्मा हजार,

लाया करें अहदनामे इलहाम,

छाँटा करें अक्ल, बघारा करें ज्ञान,

दिया करें प्रवचन, वाज,

तू एक कान से सुनती,

दूसरे से देती निकाल,

चलती है अपनी समय-सिद्ध चाल।

जहाँ है तेरी बस्तियाँ, तेरे बाजार,

तेरे लेन-देन, तेरे कमाई-खर्च के स्थान,

वहाँ कहाँ है

राम, कृष्ण, बुद्ध, मुहम्मद, ईसा के

कोई निशान।

इनकी भी अच्छी चलाई बात,

इनकी क्या बिसात,

इनमें से कोई अवतार,
कोई स्वर्ग का पूत,
कोई स्वर्ग का दूत,
ईश्वर को भी इसने नहीं रखने दिया हाथ ।
इसने समझ लिया था पहले ही
खुदा साबित होंगे खतरनाक,
अल्लाह, बवालेजान, फजीहत,
अगर वे रहेंगे मौजूद
हर जगह, हर वक्त ।
झूठ-फरेब, छल-कपट, चोरी,
जारी, दगाबाजी, छीना-छोरी, सीनाजोरी
कहाँ फिर लेगी पनाह,
गरज, कि बंद हो जायगा दुनिया का सब काम ।
सोचो,
कि अगर अपनी प्रेयसी से करते हो तुम प्रेमालाप
और पहुँच जायँ तुम्हारे अब्बाजान,
तब क्या होगा तुम्हारा हाल ।
तबीयत पड़ जाएगी ढीली,
नशा सब हो जाएगा काफ़ूर,
एक दूसरे से हटकर दूर
देखोगे न एक दूसरे का मुँह ?
मानवता का बुरा होता हाल
अगर ईश्वर डटा रहता सब जगह, सब काल ।
इसने बनाकर मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर

ख़ुदा को कर दिया है वंद,
ये हैं ख़ुदा के जेल,
जिन्हे यह—देखो तो इसका व्यंग्य—
कहती है श्रद्धा-पूजा के स्थान ।
कहती है उनसे,
"आप यहीं करें आराम,
दुनिया जपती है आपका नाम,
मैं मिल जाऊँगी सुवह-शाम,
दिन-रात वहुत रहता है काम ।"
अल्ला पर लगा है ताला,
वंदे करें मनमानी, रँगरेल ।
वाह री दुनिया,
तूने ख़ुदा का वनाया है ख़ूव मज़ाक,
ख़ूव खेल ।

जहाँ ख़ुदा की नही गली दाल,
वहाँ वुद्ध की क्या चलती चाल,
वे थे मूर्ति के ख़िलाफ,
इसने उन्हीं की वनाई मूर्ति,
वे थे पूजा के विरुद्ध,
इसने उन्ही को दिया पूज,
उन्हे ईश्वर में था अविश्वास,
इसने उन्ही को कह दिया भगवान,
वे आए थे फैलाने को वैराग्य,

मिटाने को सिगार-पटार,
इसने उन्ही को बना दिया शृगार ।
बनाया उनका सुदर आकार,
उनका बेलमुड था शीश,
इसने लगाए बाल घूँघरदार,
और मिट्टी, लकडी, पत्थर, लोहा,
ताँबा, पीतल, चाँदी, सोना,
मूँगा, नीलम, पन्ना, हाथी दाँत—
सबके अदर उन्हे डाल, तराश, खराद, निकाल
बना दिया उन्हे बाजार मे बिकने का सामान ।
पेकिंग से शिकागो तक
कोई नही क्यूरियो की दूकान
जहाँ, भले ही और न हो कुछ,
बुद्ध की मूर्ति न मिले जो माँगो ।

बुद्ध भगवान,
अमीरो के ड्राइगरूम,
रईसो के मकान
तुम्हारे चित्र, तुम्हारी मूर्ति से शोभायमान ।
पर वे है तुम्हारे दर्शन से अनभिज्ञ,
तुम्हारे विचारो से अनजान,
सपने मे भी उन्हे इसका नही आता ध्यान ।
शेर की खाल, हिरन की सीग,
कला-कारीगरी के नमूनो के साथ

तुम भी हो आसीन,
लोगो की सौंदर्य-प्रियता को
देते हुए तसकीन,
इसीलिए तुमने एक की थी
आसमान-ज़मीन ?

और आज
देखा है मैंने,
एक ओर है तुम्हारी प्रतिमा
दूसरी ओर है डासिंग हाल,
हे पशुओ पर दया के प्रचारक,
अहिंसा के अवतार,
परम विरक्त,
संयम साकार,
मची है तुम्हारे सामने रूप-यौवन की ठेल-पेल,
इच्छा और वासना खुलकर रही है खेल,
गाय-सुअर के गोश्त का उड रहा है कबाब
गिलास पर गिलास
पी जा रही है शराब,—
पिया जा रहा है पाइप, सिगरेट, सिगार,
धुआँधार,
लोग हो रहे है नशे मे लाल ।
युवको ने युवतियो को खीच
लिया है बाहो में भीच,

छाती और सीने आ गए है पास,
होठो-अधरो के बीच
शुरू हो गई है बात,
शुरू हो गया है नाच,
आर्केस्ट्रा के साज—
ट्रपेट, क्लैरिनेट, कारनेट—पर साथ
बज उठा है जाज,
निकलती है आवाज

"मद्य शरण गच्छामि,
मास शरण गच्छामि,
डास शरण गच्छामि।"